शुद्धि अशुद्धि-पत्र

पाठक महानुभावों की सेवा में सनम्र प्रार्थना है कि प्रूफ देखते समय यद्यपि इस बात का प्रयत्न किया गया कि कोई अशुद्धि रहने न पाए किन्तु फिर भी प्रेस की कृपा से अनावधानता वश निम्न अशुद्धियां रह गई हैं सो पाठक महानुभाव पुस्तक पढ़ने से पहले ठीक कर लें—और इन के अतिरिक्त अन्य कोई अशुद्धियां हों तो आप स्वयं सुधार लें और मुझे सूचित कर कृतज्ञ करें ताकि अगले संस्करण में ध्यान रक्खा जावे।

निवेदक :-

ता २५-४-१९४२ त्रिलोक चन्द जैन जम्मू।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३	८	वृद्धिमान	बुद्धिमान	५	६	जिनहे	जिन्हे
४	५	आरोगता	आरोग्यता	५	७	ओजसवी	ओजस्वी
४	८	अथात छद्मस्थ	अर्थात छद्मस्थ	६	३	सीमधरं	सीमंधरं
४	९	सब सब ईश्वर गुण	सब सब ईश्वर के गुण	६	९	तीर्थंकर श्री सीमधर स्वामी	सदैव कृपा करने वाले तीर्थंकर भगवान श्री सीमंधर स्वामी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	४	गान का	गान का	६४	२	नारियो	नार्यो
३८	५	शब्द	शब्द	६४	१०	दुर्यान्ति	दुर्यन्ति
४०	६	उलट कुम्प	उलट कुम्प	६४	१०	कहनित	कहनित्
४०	६	मन मे तुरा	मन म न तुरा	६५	११	रम्ति	रम्ति
४४	९	लक्ष	लक्ष्य	६५	१२	रहसीहस गामिनि	रहमि हमगामिनी
५१	२	आतम	आतम	६६	१	चाल	चाल
५१	४	स्परशेन्द्रय	स्परशेन्द्रिय	६६	७	कटि गजराज	कटिगजराज
५१	६	जिह्वा	जिव्हा	६७	५	यती है	यति है
५२	७	स्पर्शान्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय	६७	९	औषधी	औषधि
५८	०	यश औ महिमा	यश और महिमा	७०	४	कृति	कीर्ति
५५	४	पिगेते है	पिगेते है।	७०	९	द्वा ।	द्वारा
५५	२	राशी वल	राशी शशि वल	७१	९	भन पर्यंत	मन.पर्यंत
५६	७	पान्तरकरण	अन्त करण	७२	७	व्याख्यान	व्याख्यान

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	२	चौदभेद	चौदश भेद	१६९	५	वर यश कर।	वर यश कर ॥१२१॥
१५४	२	ऊपदेश	उपदेश				
१५९	५	ढिग आवत भावें	ढिग आवत भावें ॥११२॥	१७१	२	पकरत पटक वत	पकरत पटक पटक वत
१५९	१	कबुतर	कबूतर	१७१	४	वर यश कर	वर यश कर ॥ १२२ ॥
१६३	१	भुगा	भृगा				

पृष्ठ १२३ पर ९१वें छन्द के अर्थ के आगे का भाग १२५ पृष्ठ पर छप गया है सो १२३ पृष्ठ के अर्थ के बाद १२५ पृष्ठ के अर्थ को पढ़ें पुनः १२४ पृष्ठ के अर्थ को पढ़ें पुन. १२६ पृष्ठ के अर्थ को पढ़ें।

तारीख २५ अप्रैल १९५२

विनीत :-

त्रिलोक चन्द जैन, जम्मूं

समर्पण

लीजिये ——

भगवन् परम पुनीत पूज्य

गुरुवर ——

आप की ही दी हुई उत्तमोत्तम शिक्षा दीक्षा के प्रभाव से इस अपनी निर्बल बुद्धि के होने पर भी मैं इस काम को करने में समर्थ हो सका, अतः यह आप की आन्तरिक प्रेरणा का फल जानकर आप ही के अति पवित्र कर कमलों में सहर्ष सादर समर्पित करता हूँ ॥

आप के चरणार विन्दों का अनुचर बालक शिष्य :-

मुनि श्री लाल ॥

निवेदन

प्रिय प्रेमी प्रभाव प्रदर्शी गुण ग्राही सज्जनो !

मधुर ज्ञानामृत के प्यासे सच्चे ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले त्यागी अथवा गृहस्थी नर नारी (अर्थात् साधु साध्वी तथा श्रावक श्राविका) जनों के लिये, अनेक विध १२५ छन्दों में बनी हुई यह "श्री साधु गुण माला" नाम की छोटी सी पुस्तिका है. परन्तु गुणों में मोटी अति गहरी तथा विलक्षण है। जो विशेष कर ३२ सूत्रों का ज्ञान रखने वाले स्वानुभवी भाषा के गम्भीर कवि कसूर निवासी स्वर्गीय श्री श्रावक लाला हरयश राय

जो आत्मवान की ओजस्विनी प्रतिभा (जागती ज्योति) की झलक है, और झलक भी ऐसी जो शास्त्रों का सार रूप साधन बन कर मनुष्य मात्रार्थ कल्याणकारी परम पद मोक्ष मार्ग को सुझाने वाली है।

इन की कविता बड़ी विचित्र और चित्ताकर्षक भी है, परन्तु भावार्थ अत्यन्त गहरे होने के कारण सर्व साधारण जन समूह इन के यथार्थ तात्पर्य को न भालते हुए और आदर्श उद्देश्य से सदैव वञ्चित रहकर इस अपने घर की ज्ञान गंगा में न नहा सकते थे इसी लिये इस का प्रचार रुका रहा।

इसी बात को उपलक्ष में रखकर हमारे पूज्य पाद मुनि राज श्री श्री १००८ श्री गणावच्छेदक श्री स्वामी गोकल चन्द जी महाराज के योग्य शिष्य श्री श्री मुनि श्रीलाल जी महाराज ने उन की आज्ञा से उत्तर तट-वर्ती कश्मीर राजधानी जम्मू–नगरी में सम्वत् १९९६ विक्रमी के अन्त में

निवेदन

प्रिय प्रेमी प्रभाव प्रदर्शी गुण ग्राही सज्जनो !

मधुर ज्ञानामृत्त के प्यासे सच्चे ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले त्यागी अथवा गृहस्थी नर नारी (अर्थात् साधु साध्वी तथा श्रावक श्राविका) जनों के लिये. अनेक विध १२५ छन्दों में बनी हुई यह "श्री साधु गुण माला" नाम की छोटी सी पुस्तिका है. परन्तु गुणों में मोटी अति गहरी तथा विलक्षण है । जो विशेष कर ३२ सूत्रों का ज्ञान रखने वाले स्वानुभवी भाषा के गम्भीर कवि कसूर निवासी स्वर्गीय श्री श्रावक लाला हरयश राय

जो आत्मज्ञान की ओजस्विनी प्रतिभा (जागती ज्योति) की झलक है, और झलक भी ऐसी जो शास्त्रों का सार रूप साधन बन कर मनुष्य मात्रार्थ कल्याणकारी परम पद मोक्ष मार्ग को सुझाने वाली है।

इन की कविता बड़ी विचित्र और चित्ताकर्षक भी है, परन्तु भावार्थ अत्यन्त गहर होने के कारण सर्व साधारण जन समूह इन के यथार्थ तात्पर्य को न भालते हुए और आदर्श उद्देश्य से सदैव वञ्चित रहकर इस अपने घर की ज्ञान गंगा में न नहा सकते थे इसी लिये इस का प्रचार रुका रहा।

इसी बात को उपलक्ष में रखकर हमारे पूज्य पाद मुनि राज श्री श्री १००८ श्री गणावच्छेदक श्री स्वामी गोकल चन्द जी महाराज के योग्य शिष्य श्री श्री मुनि श्रीलाल जी महाराज ने उन की आज्ञा से उत्तर तट-वर्ती कश्मीर राजधानी जम्मू–नगरी में सम्वत् १९९९ विक्रमी के अन्त में

कुछ काल-काल व्यतीत करते हुए पुनः यहां पर १९९७ के चातुर्मास की स्थिति के अन्दर उन सार गर्भित पदों पर वर्त्तमान भारतीय भाषा में बड़े यत्न से "प्रतिपद भावार्थ-प्रकाशिका" नाम की सर्वोत्तम व्याख्या की रचना की और यहां के निवासी अर्हन्त निष्ठ जैन धर्म में अनुराग रखने वाले प्रज्ञप्ति कल्याण दात्री शासना श्रुत देवताधिष्ठात्री श्री सरस्वती-विद्या देवी के पवित्र पाद पद्म सेवी स्वतन्त्र कवि किंकर जी से व्याख्या का संशोधन कराकर साथ ही मूल संस्करणों में रह गई हुई अनेकों अशुद्धियों को भी शुद्ध कराया गया है। जिस के लिये श्री स्वामी श्री लाल जी महाराज हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

—:०:—

परोपकाराय सतां विभूतयः—

अर्थात् बुद्धिमानों की विद्यादि सम्पत्ति लोकोपकारार्थ ही हुआ करती है, विद्यानुगत ज्ञान धर्म्म सम्बन्धी प्रचार कार्यों का इतना भारी महत्व है कि—

द्रव्य दान द्वारा परा, तुलना करे न रत्न ।
विद्या यत्न विशेष है, सब रत्नन में रत्न ॥

और यहाँ के प्रसिद्ध धर्म प्रेमी शास्त्रानुरागी पुस्तकों को छपवा कर धर्मार्थ देने वाले दानवीर श्रीमान् लाला जुगलकिशोर जी सुपुत्र स्वर्गवासी श्री लाला जगन्नाथ शाह जी ओसवाल इस के छपवाने तक का समस्त कार्य्य भार लेकर अमित यश के भागी बने हैं जिस के लिये उन का अतीव धन्यवाद है जिन्हों ने अपनी सुफल कमाई के धन का सदुपयोग करते हुए ऐसी

प्रगटता की और श्री महावीर जैन स्कूल जम्मू को विक्रयार्थ दान दी। इन का मूल्य केवल लागत मात्र उन का स्थायी भाव स्थिर रखने और सम्मूच्छि-यानों की प्रतिष्ठार्थ ही रक्खा गया है. क्योंकि प्रत्यक्षतया कई स्थानों में देखने में आया है कि कई एक सुन्दर पुस्तकें अमूल्य वितरण होने से इधर उधर अनधिकारियों के पास पहुंचकर अधोगति के गर्त में समा जाती हैं. इन लिए इस आपत्ति के निवारण का एक मात्र यही उपाय है. साथ ही पुस्तक के पुनः संस्करणों में दान इत्यादि का आश्रय भालने की कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ती। हम चाहते हैं कि यह पुस्तक दोनों प्रकार की गृहस्थी अथवा त्यागी जनता (अर्थात् चारों तीर्थों साधु. साध्वी वा श्रावक. श्राविकाओं) के कर-कमलों में सामान्य विशेष रूप से(गृहस्थियों को साधारण=आम तौर पर और-त्यागी साधुओं के लिये विशेषतया=खास तौर से सेव्य रूप में) विराजमान

होकर हृदय मण्डल का हार बन कर गुणों से मस्तिष्क को महकाती हुई, और चारित्र में चरितार्थ होती हुई जगत का कल्याण करने वाली बने। अन्त में स्यालकोट निवासी धर्मप्रेमी उत्साही कार्य कर्ता लाला प्यारा लाल जी [illegible] का हार्दिक धन्यवाद किया जाता है जिन्हों ने इस पुस्तक के प्रूफ [illegible] और [illegible] आदि के प्रबन्ध करने में भरसक परिश्रम किया है।

भूमिका

साधु गुण ग्राही धर्म ध्यानी प्रेमी पाठक वृन्द —

चौरासी लाख अनन्त योनि चक्र में चक्कर पर चक्कर खाते हुए, गिरते पड़ते और रोते धोते जब कहीं प्राणधारी जीव का पुण्य उदय होता है, तब कहीं जाकर मानव देह को प्राप्त होता है। यदि फिर इस मनुष्य शरीर वाले समय को वृथा खो बैठता है, तो फिर वही आवा-गमन का झंझट मय जाल आ घिरता है। इस से बचने का साधन केवल मुक्ति का द्वार ही है, जो अनन्त योनि रूप द्वारों के अन्दर अनन्त समय तक भटकने से बचाता है। और मोक्ष द्वार तक तभी पहुंच सकता है जब कि इस का चारित्र (कार्य्य

व्यवहार) शुद्ध हो, चारित्र का सुधार साधु (श्रेष्ठ) गुणों से ही हो सकता है, तथा श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति दीर्घ दर्शिता सम्यग्दर्शन और अच्छी प्रकार की देव भाल से ही हो सकती है।

सो आप की देख भाल के लिये चारित्र को सुधारने वाली सर्व गुण सम्पन्न यह "श्री साधु गुण माला" नाम की पुस्तक सुन्दर व्याख्या से सुसज्जित होकर आप के समक्ष उपस्थित है। इस को अनेक सरस छन्दों में कहते हुए स्वर्गीय ला० हरयशराय जी श्रावक कवि ने जिनवर वन्दना एक मनोहर विचित्र ढङ्ग पर वर्णन की है।

साथ ही फल को बताते हुए गुण की प्रशंसा करके साधु जनो के २७ मूल गुणों के अन्तर वर्ती पञ्च महाव्रतों से लेकर मरणान्तोत्सर्ग के महा क्लेश सहन तक, इन पूर्व गुणों के वर्णन के पश्चात, आगे उत्तर गुणों में

सा[illegible] की स्थिति, विहार इत्यादि से लेकर समस्त क्रियाओं की प्रशंसा पूर्वक निवृत्ति करके अन्त में सद्गुणों की प्रतिष्ठा करते २ साधु यश गान पर ही ग्रन्थ की अच्छी प्रकार पूर्ति की गई है।

विस्तार के भय से इतने गहन विषय को भूमिका में लाना अत्यन्त कठिन है, कठिन ही नहीं अपितु दोषा पत्ति जन्य भी हो जाता है।

इस लिये पाठक गण पुस्तक के अन्दर सविस्तर अवलोकन कर अनुवर्त्तन द्वारा अपने जीवन को सुधारते हुए मेरे पुरुषार्थ और सहायक प्रेमियों के उद्योग को भी सफल करने का प्रयत्न करेंगे।

यदि इस में कोई रही सही त्रुटि शेष रह गई हो तो कृपया सज्जन

महानुभाव स्वयं ही सुधार कर हमें भी सूचित करें क्योंकि सर्वथा भूल चूक से रहित होना साधारण मनुष्य मात्र की शक्ति की सीमा से बाहर की बात है।

इस के लिये व्याख्याकार क्षमा का इच्छुक है।

आप का दोषी-

व्याख्याता -

श्री लाल जैन मुनि

ॐ
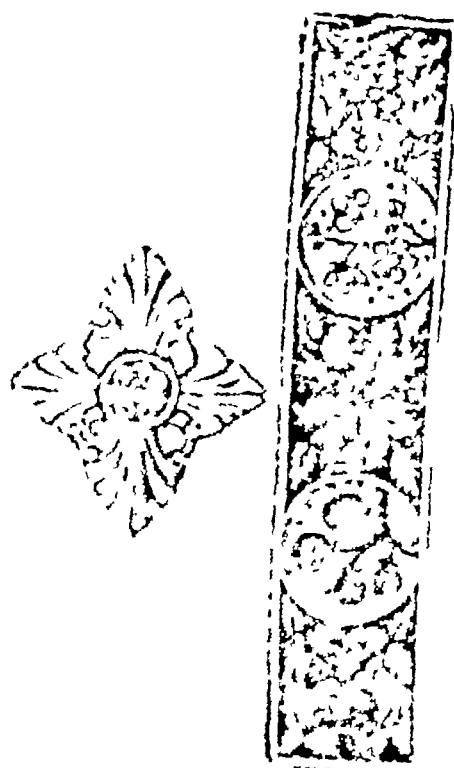
प्रति पद भावार्थ-प्रकाशिका

व्याख्या युक्त-

श्री साधु गुण माला

व्याख्या कार का मंगला चरण-

(दोहा)

प्रथम वन्दि अरिहन्त वर, सिद्ध पदान्तर माल ।
प्रति पद रच व्याख्या सरल, ग्रन्थ साधु गुण माल ।

(सवैया)

सिद्ध सुरेश महेश मुनि, वृषभन्त, प्रचार्य वृन्द यती को ।
श्री श्रुत-श्रागम दिव्य गुरु, गण धारक, पाठक साधु सती को ।
सम्यग-दर्शन-ज्ञान-चरित्र, सभी पद साधन मोक्ष रती को ।
ध्यान धरे सिलि हृ जिन से, सुविवेक सुधारस पान मति को ॥ २ ॥

(दोहा)

प्रणमों श्री श्रुत देवता, वरद शासना नाम ।
सरस्वती हो बल वती, होयँ सिद्ध सब काम ॥ ३ ॥

अब श्री साधु गुण माला की प्रतिपद भावार्थ—प्रकाशिका-व्याख्या का प्रारम्भ होता है—

ॐ श्री वीतरागाय नमः

श्री साधु गुण माला

(सर्व गुरु वर्ण दोहा)

श्री त्रैलोक्या धीश को, वन्दों ध्यावों ध्यान ।
या सेवा माता सुधी, पावों नीको ज्ञान ॥ १ ॥

---

१. मैं उत्त शोभा युक्त तीन लोक के पालक—देव मनुष्यादि के अधिपति को ध्यान वन्दना के सहित आराधना करता हूं अर्थात तीन लोक के कर्ता धार जिनेश्वर भगवान् जिन को ध्याता हुआ बुद्धिमान मनुष्य

(बाकी टीका सफा नं० २ पर देखो)

(प्रश्न (१२) स्वर अनुक्रम वर्णन—दोहा ।)

अलख आदि इस ईश को, उत्तम ऊंचो एक ।
ऐसो और्दिक और नहीं, अंत न अः जग टेक ॥ २ ॥

(भाग २ री बाबत)

उत्तम ज्ञान आरोगता को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

२. चर्म चक्षु वाले मनुष्य अर्थात छद्मस्थ जिस को नहीं देख सकते और जो आदि अन्त रहित तथा सर्वोत्तम सर्वोच्च नाम वाला वह एक ही ईश है, उस सकल जगत के आधार भूत के अति रिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है, यह सब ईश्वर गुण हैं ॥ २ ॥

(यम का लंकार सर्व लघु वर्ण)

मुनि मुनिगनि चरणान करण, शिव शिवमग शिव करण।
जम जम मामियर दिपत जग, जय जय जिन जनशरण ॥३॥

सर्व लघु वर्ण—

करत मृगश मृग असुर अहि, उडुगण नर गहि शरण।

---

३. जिनके मुनिजन तीर्थंकर अथवा जिन नाम लेकर जय जयकार करते हुए, शरण के लिये उनसे मानते हैं जो चन्द्रमा और सूर्य की तरह ओजस्वी ज्ञान से प्रकाशमान होते हुए जगत में कल्याणकारी मार्ग के प्रदर्शक हुए गये हैं ॥ ३ ॥

[illegible] । [illegible] ।

जहि सिमरण समकित विमल, प्रणमत हरयश चरण ॥ ४ ॥

शिष्टाचार पूर्वक वन्दना ।

वंदों श्री सीमधरं स्वामी सदा कृपाल ।
श्रुति देवी को वन्दके, रचों साधु गुणमाल ॥ ५ ॥

---

४. पूर्वोक्त कहे हुए श्रेष्ठ नाम वाले ईश्वर का सुयश विमानक, भवन पत्ति, नाग, ज्योतिष्मान, तारादि देवता समूह, तथा मनुष्य अच्छी प्रकार वार २ चिन्तन करते हुए शुद्ध भाव की प्राप्ति करते हैं, सो उस के परम पावन रूप चरणों में ग्रन्थकार कवि हरजश राय का नमस्कार है ॥ ४ ॥

५. महा विदेह क्षेत्र के वर्त्तमान तीर्थंकर श्री सीमन्धर स्वामी तथा वाणी देवी को नमस्कार करके उक्त ग्रन्थ की रचना करता हूं ॥

जिनवर भाषित जैन मत, यत्न मूल जयवन्त।
यती धर्म जग जल तरण, जन्म जरा दुःख अन्त ॥ ६ ॥
मुनि ऋषि तपसी संयमी, यति तपो धन सन्त।
श्रमण साधु अणगार गुरु, वंदों चित्त हरषन्त ॥ ७ ॥

---

६. तीर्थंकर कथित मुख्य (श्रेष्ठ) विचार जनित जैन यती धर्म जिसका अन्तिम अभिप्राय संसार रूपी समुद्र के तरने तथा जन्म और बुढ़ापे इत्यादि दुःख के नाश के लिये है ॥ ६ ॥

७. मन रोकने वाले, (१) सात्विक बुद्धि, (२) सहनशील (३) यत्नवान (४) जितेन्द्रिय (ब्रह्मचारी) (५) जिन्हों ने उच्च कक्षा का तप तपा हुआ

(बाकी पत्र ८ पर देखें)

पद्माकार सर्व लघु वर्ण—

परम मुकति पद अरथ तप. कर मुनि उपसम चरत ।
गहि जिन मति भव जल तरत. उच्च अविचल पद धरत ॥ ८॥

(गाथा ७ की बाकी)

६. (६) परोपकारी (७) बहुश्रुत (८) श्रेष्ठ स्वभाव, (९) गृह विहीन (१०) ऐसे दस प्रकार के साधु गुरुओं के प्रति मैं प्रसन्नता पूर्वक मस्तक को नमाता हूं ॥ ७ ॥

८. जिन धर्म पर चलने से अन्तिम पद अर्थात मोक्ष जिस के लिये चार कषायों को उपशान्त करके मुनि तप का आचारण करते हैं. ऐसे ऊंचे निश्चल (स्थिर) पद पर संसार रूपी समुद्र को तर कर ही उस स्थान पर पांव धरते हैं ।

जिन के धर ध्यान सुज्ञान भये, सुख देखत लोचन को मन को ।
जिन के सुन बैन सुचैन बचे, परमान किया प्रभुता जनको ।
जिन के पग लाग सुभाग भये, बल रूप सुपुष्ट करे तन को ।
तिन साधु यती ऋषि को प्रणमों, गुणगाय लहो थिरता धन को ६ ।

---

६. जिन का ध्यान धरने से मनुष्य बुद्धिमान होकर मन और आंखों द्वारा सुख को देखते हैं, जिन की वाणी सुन कर प्रसन्नता चढ़ती है । उन वचनों को भगवान ने भी आदर से अङ्गीकार किया है । जिन के चरणों की सेवा से शरीर सहित पुष्टि, रूप, बल और उत्तम यश को प्राप्त होने

(बाकी ... पर देखें)

जिम केतक के दल के महिके. अलिके चित्तके मटिके वहिके ।
मधु के मतके. चनके. मरके. पिक केम चुके चिन के लवके ।
घनके चटके स्वरके मुनके. किम केकि चुके नृतके लटके ।
मगके रसके किसके तुटिके. कवि केम चुके स्तवके कथके ।१०।

(गाथा ९ की भाषा)

हैं. उन श्रेष्ठ जितेन्द्रिय सत्पुरुषों को वन्दना कर गुण गाते हुए बुद्धि रूपी धन को प्राप्त करो ॥ ६ ॥

१०. जिस प्रकार केवडे के फूल की पंखडियों से बहने वाली सुगन्ध में भौरा बैठे बगैर नहीं रहता । जैसे वसन्त ऋतु = चैत्र वैसाख मास में वनके

(बाकी गाथा ११ पर देखें)

वरणा गर इन्द्र करें महिमा, मुनि ध्याय भवाम्बुद को तरणा ।
तरणा भवसागर चाहत हौं, हमरा यह काज तुम्हें करणा ।११।

---

११. हे परमात्मन् आप निर्बलों पर तरस करते हुए उन पर दया करने वाले हैं पद पङ्कज अर्थात् आप के पवित्र चरण कमलों का ही सहारा है. हे भगवन् शरण में आए हुए जनों को आप ही रखने वाले हैं. और अनन्त गुणों का समुद्र कह कर आप का वर्णन करते हैं. और वर्णों की खान के अधिपति इन्द्र आप की स्तुति गाते हैं । मुनि जन आप का ध्यान करके संसार रूपी गहरे जल को तर जाते हैं. सो इस प्रकार मैं भी इस संसार समुद्र से पार होना चाहता हूं मेरा यह काम आप ने ही करना है ।

करुणा सुर धेनु मणी करुणा, करुणा गुण सिन्धु सुधा करुणा।
करुणा बिन और नहीं करुणा, करुणा कर देहु हृदे करुणा॥१३॥

(सवा १३ की बाकी

नर और नारी (स्त्री तथा पुरुष) जन नगर में प्रधान (मुख्य) पदवी को प्राप्त होते हैं. वही भगवान् का जाप और गुणानुवाद कर सकते हैं करुणा के समुद्र प्रभु के स्मरण के बिना पुरुष देव गति को नहीं पा सकते ॥ १२ ॥

१३. जीव मात्र पर जो तरस करना है प्रायः इस को चार प्रकार की उपमायें दी गई हैं. अर्थात् कामधेनुं गौ, चिन्ता मणि रत्न, गुणों के समुद्र, तथा

(बाकी सवा १४ पर देखें)

अघ पुंज हरे चित्त शुद्ध करे, त्रयताप हरे गुरु की सरता ।
भ्रम अन्ध मिटे मद चोर हटे, तिथि पूर्णिम कीर्त्ति शशी धरता ।

(गाथा १४ का अर्थ)

इकट्ठे हो जायेंगे, गुणों के एकत्रित होने पर उस की गति कल्याण (मोक्ष) मार्ग पर होने लगेगी, जिस में अनन्त देवताओं के स्थान हैं, कितने ही पुरुष देव नगरों में रह गये, और जो शिवलोक में पहुंच गये वह पुनः (फिर इस संसार चक्र (जन्म मरण के बन्धन) में नहीं आये अर्थात अमर (अविनाशी) पद में टिक गये । और जो देवता बन जाते हैं वह फिर मर्त्य लोक में जन्म पाकर उत्तम करणी करके फिर मोक्ष पाते हैं, इस प्रकार मैं ने गुरु जनों से सुन्दर वचन सुने हैं ॥ १४ ॥

चितवें त्रस थावर लिंग त्रिया, गति चार पचीन्द्रिय काय छई ।
जिय सूक्षम बादर भेद बने, न हने न हनावत साधु थई ।

सफा १७ की बाकी ।

संसार समुद्र को तरने के लिये नवका (मछुवे) की भांति है, जिस को मुनिराज भली प्रकार ग्रहण करते हैं ॥ १५ ॥

(जीव दया किन जीवों की करनी है, सो अगले छन्द में वर्णन किया गया है ।)

१६. चैतन्य (हिलने जुलने वाले) लक्षण युक्त त्रस=(भय के मानने वाले) तथा स्थावर (एक स्थान पर टिके रहने वाले अथवा चेष्टा वाले अङ्गों से रहित) जीव जिन के तीन चिह्न स्त्री, पुरुष और नपुन्सक (हीजड़ा पन)

बाकी सफा १९ पर देख)

इम आदि महाव्रत धार मुनी, करुणा रस सुन्दर रूप लई ॥१६॥

(इति प्रथम महाव्रत)

चार और पांचवीं श्रवणेन्द्रिय (कानों) वाले नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता इत्यादि, छै काय (शरीर)=जैसे पृथवी, जल, तेज, वायु, वनस्पति तथा त्रस इन सूक्ष्म और स्थूल दो तरह के जीवों का बहुत विस्तार है, साधु होकर किसी जीव की हिन्सा (वध) न करे और न करावे, किन्तु जहां तक कि हिन्सा करने वाले का समर्थन (पक्ष=तरफदारी) भी न करे। यह तीन बातें ज्ञान वान् मुनि में होनी चाहियें, इस प्रकार पहले महाव्रत को धारण करके श्रेष्ठ जन मनोहर करुणा रूप रस को पाते हैं।

॥ १६ ॥

(सफा २१ का बाकी)

(ज्ञानि) के उदय होने पर निन्दा रूपी अन्धकार मिट जाता है, जिस से देवलोक को प्राप्त करके नीच गति को रोक लेता है। उस के संशय रूप फन्दे कट जाने पर चित्त रूपी पंख छूटने से वह ब्रह्मगति अर्थात केवल ज्ञान स्वरूप उच्च दशा पर पहुच जाता है, सच्चे वचन में अनेकों गुण होने से मुनि राज इसे मित्र वत् जान कर इस को अपने अन्दर बसा लेते हैं ॥ १७ ॥

१८. साधु मुख से अच्छी प्रकार विचार कर सर्व जीव हितकारी वचन बोलते हैं, जो क्रूर असत्य पाप भरे दूसरों को संकट में डाल कर हृदय में

(बाकी सफा २३ पर देखें)

नहिं नींचागम कुइय पाप मर्या. पर पीड़ नहीं दुनिया जिन के।
जिन आगम के परमाण कहैं. अन मैत नहीं चलते जिन के।
भन मान गुमानन आनम को. प्रणमों सुखदायक है जिन को।३८।

इति दर्शन स्तवन।

मत्त गयन्द छन्द —

पापकि बुद्धि जगी जिन के घट, लालच सों पर वस्तु गहे हैं।
ज्ञान विवेक दया नसि कें सब, छोड़ चले चित कोप वहे हैं।
दुस्तर भार लिये जिम डूबत, त्यों भव सागर डूब रहे हैं।
सो अघ त्याग सन्तोष गहें, ऋषि सेवक वन्दत मोद लहे हैं।

---

१६. जिस के अन्तःकरण में पाप की बुद्धि उत्पन्न होती है। वह लोभ के वशी भूत होकर पराई वस्तु का हरण करते हैं, बिना दीये दान लेने वाले को ज्ञान, विचार, दया तथा सम्यक् दर्शनादि गुण छोड़ कर चले जाते हैं और चित में क्रोध का प्रवाह वहने लगता है। तो वह संसार

(बाकी टीका सफा २५ पर देखें)

साधु तजें अनदत्त पदारथ, श्रोर तृणादि कभी न लहे हैं ॥
सो तृप्त उत्तम लक्ष्मपती चित, पाप अलेप सिधंत कहे हैं ।२०।

इति तृतीय महाव्रत –

(सफा २४ को बाकी)

सो इस जगत में मार पीट और शरीर के अङ्ग (नाक, कान, भुजादि) भङ्ग कराते हुए अन्त को मर कर परलोक यातना (यमदण्ड) को भी भोगते हैं । साधु जन अदत्त वस्तु का त्याग करते हुए राख तिणके तक को भी उस के स्वामी को अनुमत्ति (आज्ञा) के विना नहीं लेते, वही साधु ज्ञान रूपी लक्ष्मी करके तृप्त हैं जिन्ह का हृदय पाप से नहीं लिपा गया, उनपुरुषों ही को सिद्धान्त शास्त्रकारो गुरु वसाधु कहा है ।२०।

नाग महा वल मत्त गयंद महा, वल केसरि जीतन हारे।
लाख सों युद्ध करे धर धीरज, तोड़न कोट महा गढ़ भारे।

(दफा २७ की बाकी)

देव के प्रभाव से देव और मनुष्यादि जो नारी के चरनों पर अपने शिर को रख कर लज्जा, वल और धैर्य्य को खो बैठते हैं, सो ऐसे काम देव शत्रु को जीत लेने वाले तपस्वी मुनियों को सेवक जन प्रेम से पसीज कर मस्तक नमाते हैं ॥ २१ ॥

२२. भयानक सर्प, महा वलवान मस्त हाथी और शेर को वशी भूत करने वाले, धैर्य्यधारी जो वड़े २ किलों की दीवार तोड़ कर लाखों मनुष्यों से युद्ध करें। लोहे को मल दे तथा पर्वत्त को गिराकर दिखा दें, ऐसे वड़े

काम भरी निरलज्ज भई, मुनिराज समीप सुकामिनी आई।
मेरु अडोल सुशील विषे, थिर जानत हैं भगिनी अरु माई।२३।

(सफा २९ की बाकी)

झनकार), मन्द २ मुश्कराती हुई कटाक्ष (हाव भाव) करके मुख से गीत (स्वरयुक्त) अलाप करती हुई बात करती है। ऐसी काम से भरी हुई रति के समान काम की इच्छा रखने वाली स्त्री लज्जा से रहित होकर मुनि के पास यदि आये तो वह मेरु-पर्वत के तुल्य सुन्दर शीतल स्वभाव स्थिर बुद्धि महात्मा उस को भी अपनी बहन और माता के समान समझते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मचर्य्य की प्रतिष्ठा के विषय में —

या जग में धन हेम नगादि, रसायण पारस पाहन।
भूमि गृहादि पशुगण अम्बर, भूषण भाजन आयुध वाहन।
दास रु वनितादि वर्नी विध, होत परिग्रह संयम दाहन।
सो मुनिराज तजें चित सों शुभ आतम ज्ञान महाधन चाहन।२५।

हुआ स्वर्ग के सुख को भुगाता है, अन्त में मोक्ष को प्राप्त करा और सब दोषों को दूर करता है, धन्य हैं वे मुनीश्वर जो इस को धारण करते हैं ॥ २४ ॥

अब अर्थ संग्रह परित्याग विषय में—

२५. इस संसार में धन (मुद्रा, मुहर) चान्दी सुवर्ण और औषध सिद्ध

लोभ महा छल माय रमें, अघ पुन्ज वधावन रूप थयो है।
सो दुःख दायि रुलावन हार, विचार विचक्षण छांडि दियो है।
उत्तम लोक विषे ऋषि राज, सदा तिन को जयकार भयो है।२६।

इति पंच महाव्रत ॥ अथ रात्रि भोजन ॥

परिग्रह के साथ ही रहती है, पाप रूप ढेर के बढाने का बड़ा भारी घर है। सो यह जगत् में दुःख दायक रुलाने वाला है, इस परिग्रह के त्यागी बुद्धिमान महात्माओं की सर्वदा संसार में जय जयकार होती है ॥ २६ ॥

लोभ महा छल माथ रमें, अघ पुञ्ज बधावन रूप थयो है।
सो दुःख दायि रुलावन हार, विचार विचक्षण छांडि दियो है।
उत्तम लोक विषे ऋषि राज, सदा तिन को जयकार भयो है।२६।

इति पंच महाव्रत ॥ अथ रात्रि भोजन ॥

परिग्रह के साथ ही रहती है, पाप रूप ढेर के चढाने का बड़ा भारी घर है। सो यह जगत् में दुःख दायक रुलाने वाला है, इस परिग्रह के त्यागी बुद्धिमान महात्माओं की सर्वदा संसार में जय जयकार होती है ॥ २६ ॥

जीव महीन दिनें न लखें, विन तीक्षण दृष्ट विचार विचक्खन ।
रात्रि कहां लखिये तिह हेत, दया कर साधु तजें निशि भक्खन ।
और महा फल है अर्धायु, लगै तप माहिं लखो शुभ लक्खन ।
ते प्रणमों अणगार तपोधन, धार महाव्रत ऊरध गच्छन ।२७।

रात्रि आहार वर्जन विषय में –

२७. × जो सूक्ष्म (बड़े बारीक) जीव दिन में भी तेज़ नज़र के बिना दिखाई नहीं देते, भला वे रात्रि को कैसे दिखाई दे सकते हैं इस लिये दया के अर्थ साधु रात्रि भोजन त्याग करते हैं, और रात्रि भोजन त्याग से एक बड़ा फल तो यह प्राप्त होता है कि आयु का

आधा भाग शुभ तप में व्यतीत होता है, बड़े व्रतों को धारण कर तपो-धन साधु ऊंची गति मोक्ष को जाते हैं ॥ २७ ॥

---

४ [illegible] का कार्य भी [illegible] अच्छी तरह दिखाई नहीं देती और अनेक प्रकार [illegible] रात्रि में भोजन खाने [illegible] की रसोई भी रात को बनानी पड़ेगी इस से अनेक [illegible] होगा, जिस से श्रावक का आचार धर्म भ्रष्ट हो जाता है। सूक्ष्म त्रस जीव दिखाई नहीं पड़ते यदि दिखाई भी पड़ें तो उन के बचाने का यत्न नहीं बन पड़ता, आस पास की [illegible] और [illegible] अनेक जीव व्याकुल व्याकुल होकर अग्नि में गिर पड़ते हैं [illegible] के [illegible] गिर पड़ने की सम्भावना से पुत्र कलत्र आदि सम्बन्धियों के प्राण विनाश का [illegible] और [illegible] कीट, पतंग, [illegible] इत्यादि के गिरने की आशंका, जिन के भक्षण से बड़े २ रोग [illegible] उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कीड़ी के खा जाने से शरीर की खाल पर खून उभर आता है जिस से अत्यन्त [illegible] पैदा हो जाती है अर्थात् [illegible] ([illegible]) निकल आती है, अथवा [illegible] रोग हो जाता है। और जूं से जलोदर, मकड़ी से कुष्ट मक्खी से वमन (उलटी) कीट, [illegible] इत्यादि के खाये जाने से अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। रात्रि भोजन इसी लिये वर्जित किया गया है ॥ २७ ॥

अब पञ्चेन्द्रिय जीतने के गुण –

कान सुनें मृदु वाक्य मनोहर, नाटक गीत बजंत्र पियारे।
और सुनें निज कीरति को नहिं, राग कि रीत कछू चित धारे।
जो विपरीत सुनें दुःखदायक, तो नहिं द्वेष सु ध्यान विचारे।
सो श्रुत इन्द्रिय जीत तपोधन, सेवक के सब काज सुधारे।२८।

---

२८. कानों से मीठे (नरम) वचन, मनोहर नाटकों के गीत प्यारी आवाज वाले बाजे और अपनी प्रशंसा इत्यादि मनोरम बातें सुन कर साधु महात्मा इन पर प्रसन्न नहीं होते और न ही इन पर ध्यान देते हैं. और यदि इन से उलटी दुःख देने वाली बातें सुनें तो भी उन पर न

देख मनोहर देव मुगी नर, नारि पशु खग सुन्दर मूरत।
बाग विपिन नृत में नट की, विध तान करें मन राग कि मूरत।
जो विपरीत कुरूप भयङ्कर, तो नहिं द्वेष करी मन धूरत।
सो दृग इन्द्रिय जीत तपीश्वर, सेवक को ममता रस पूरत।२६।

द्वेष करते हैं न ही उन पर ध्यान देते हैं. ऐसे श्रुतेन्द्रिय के विषय शब्द को तपोधन मुनि महात्माओं ने वश कर लिया है जो सेवकों के धर्म सम्बन्धी सभी काम ठीक कर देते हैं ॥ २८ ॥

२६. मन को अच्छी प्रकार भाने वाले देवता, देवी शोभायमान पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी, सुन्दर मूर्ति और उपवन में नाच करते हुए विद्याधरों (गन्धर्वों)

के करतबों को देख अपने मन में राग का विकार उत्पन्न नहीं करते. और जो इस से उलट कुरूप डरावने रूपों को देख मन में बुरा मनाते हुए घृणा नहीं करते, सो चक्षुरिंद्रिय (नेत्रों के विषय रूप) को जीतने वाले तपीश्वर महात्मा सेवकों के अन्दर समदृष्टि (एकतार) आदर्श लक्ष को भर देते हैं ॥ २६ ॥

केसर चन्दन फूल फलादिक, चार पदारथ गन्ध मई है।
नाक सुगन्ध गहे सुखदायक, राग की रीति न साध लई है।
जो दुर्गन्ध महा दुःखदायक, तो नहि द्वेष सुवृत्त थई है।
नाक जितेन्द्रिय साधु भये, हरषै प्रणमो चित्त शान्त भई है।३०

भोजन पान मनोगम सुन्दर, स्वाद मयी रसना रस पोषी ।
प्राप्त होत जबै तब रीझ न, प्रीति न ठानत है मुनि मोषी ।
जो कटुकादिक है दुःख दायक, तो नहिं द्वेष करें मन रोषी ।
सो रस इन्द्रिय जीत गुणाकर, वंदत हों तिन को गति चोषी ।३१।

---

३०. कुंकुम (केसर), चन्दन, फूल और फल यह चार वस्तु गन्ध वाली हैं, नाक जब सुख के देने वाली सुगन्धि को पाये तो साधु उस में राग पैदा नहीं करते, और जो महा दुःख देने वाली दुर्गन्ध का प्रवेश हो जाय तो घृणा भी नहीं करते, सो ऐसे घ्राणेन्द्रिय नाक के गन्ध विषय को जीतने वाले साधुओं को प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार करने से मन निश्चल

जो स्पर्शेन्द्रिय को सुखदायक, साज मनोगम आय मिले हैं।
तो नहिं राग विषय चित्त राजत, आतम राम समाधि रले हैं।
जो विपरीत मिले तब द्वेष, नहीं समता धर भाव भले हैं।
सो स्पर्शेन्द्रिय जीत विराजत, तो पद वंदत पाप टले हैं ।३२।

(स्थिर भाव वाला) हो जाता है ॥ ३० ॥

३१. अन्नजल और मन के अनुकूल जिह्वा के लिये स्वादकारी रस जब प्राप्त हों, तब मोक्ष के अभिलाषी उस पर प्रीति न करते हुए, अर्थात प्रसन्न नहीं होते हैं, और जो दुःखदायी कड़वे इत्यादिक पर घृणा करके रुष्ट नहीं होते, सो रसनेन्द्रिय (रसा स्वाद विषय) को जीतने वाले गुण की

क्रोध धसे चित में विष घोलत, तावत पापकि बुद्धि पढावे ।
लोचन में भृकुटी भुज हाथ मों, रुद्र महारस रूप दिखावे ।
आप तपे पर तापत है खल, लोक विषे पत प्रीत गंवावे ।
कोप निवार विराजत हैं ऋषि, खन्त मखी तिह आदर पावे ।३३।

स्थान श्रेष्ठ गति वाले साधुओं के प्रति नमस्कार है ॥ ३१ ॥

३२. जो स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा के साथ लगने तथा समागम इत्यादि विषय) को सुख देने वाली मनो भावित सुन्दर वस्तु आ मिले, तो उन के प्रति जिस के मन में प्रीति उत्पन्न नहीं होती और आत्मा को आनन्द मय

समाधि (स्थिर भाव) में लगाये रहते हैं, और जो इन से विरुद्ध पदार्थ के मिलने पर भी द्वेष भाव को न जनाते हुए अच्छी तरह समान भाव को रखते हैं, सो स्पर्शेन्द्रिय विजय वाले साधुओं के चरण कमलों की वन्दना से पाप परे हट जाते हैं ॥ ३२ ॥

३३. क्रोध जब चित्त में आ धसता है तब मन में विष को घोल पाप की वृद्धि खिड़ा देता है, आंखों में तिउड़ी चढ़ाते हुए हाथ से दूसरे को मारने की इच्छा करता है। तब रूप भयङ्कर दिखलाई पड़ता है। आप तपता हुआ तथा दूसरों को तपाता हुआ मूढ पन (उज्जन) और अनुराग को गवां देता है। क्रोध को त्याग कर क्षमावान् रहते हुए कृपाल ऋषि हर जगह सत्कार पाते हैं ॥ ३३ ॥

मूरख चित मलीन महा पशु, देख के साधु कुं देवन गारी।
ताड़न तर्जन हाथ उठावन, निन्दत साथ निरादर भारी।
तों मुनिराज कुं कोप न आवत, जान क्षमा शिव काज सँवारी।
ते मुनि के पद वन्दन कों, उमगी मनमा भव तारण हारी।३४।

---

३४. पशुओं के समान महा मलीन चित्त वाले बुद्धि हीन मनुष्य साधु को देख कर दुष्ट वचन बोलते हैं, मारते धमकाते फटकारते और भारी अपमान करते हुए साथ ही कलंक भरे वचन कहते हैं। तो भी मुनि-राज क्षमा को कल्याणकारी जान कर क्रोध में नहीं आते, उन संसार समुद्र से पार लगाने वाले साधुओं के चरण वन्दन करने के लिये लोगों

काल कुरूप अनार्य मानव, कोप कृपाण कुरूप दिखावे ।
यक्ष पिशाच वैताल भयानक, क्रूर महा जब आन डरावे ।
सिंह भुजङ्ग गजादि बुरे पशु, खेद करें बहु पीड़ जनावे ।
आतम अङ्ग अभङ्ग लखे जपि, देह मों आपन प्रीति न लावे ॥३५॥

कि चित्त में हार्दिक इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ३४ ॥

३५. काल की तरह भयङ्कर रूप होकर खोटे मनुष्य बुरी क्रोध रूपी छुरी को दिखाते हैं तथा यक्ष=जङ्गली देव योनि, पिशाच=प्रेत योनि, वैताल=भूत योनि इत्यादि की तरह महा कर्कश (सख्त भयवाला) रूप बनाकर आ डराते हैं । अथवा शेर, सांप, हाथी इत्यादि खोटे पशु सारे ही तंग

मान रे मानव मान बुरो, मति मान गुमान न मान न नीको।
मान करी अपमान लहे, न विमान लहै वर देव पुरी को।
मान मिटे मनमान बधे, परमान करो शुभ वाक यती को।
मानव जन्म समान नहीं, कछु धर्म सुमानव जात भली को।३६।

करते हुए कष्ट देते हैं, किन्तु मुनि जन आत्मा को अविनाशी जानकर अपने इस नाशवान् शरीर से स्नेह नहीं लगाते ॥ ३५ ॥

३६. हे मनुष्य तू समझ ! मान करना (स्वयं बड़ा बनना) बहुत ही बुरा है बुद्धिमान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये अभिमान (अकड़पन) अच्छा नहीं है,

देव समूह सुशोभित सुन्दर, इन्द्र जहां शिर आन नमावें।
खगड़ पती खग नायक भूपति, मीन पती पद वन्दन आवें।
जोड़ के हाथ करें महिमा यश, वैन कहें जयकार बुलावें।
या विधि में मन मान न आवत, सो प्रणमो ऋषि राज कहावें॥३७॥

मान करने पर अपमान को लेना पड़ता है, मानी मनुष्य को सुन्दर प्रधान देवता का विमान कभी भी नहीं मिलता। मान के दूर कर देने पर सन्मान रहता है, साधु यतियों के अच्छे वचनों पर विश्वास करना चाहिये, जन्मों में मनुष्य जन्म के समान कोई जन्म नहीं, और मनुष्य जातियों में धर्म परायण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं उन्हीं का उत्पन्न होना उत्तम

आय नमें सुर भूमि मंझार, सुगन्ध खिरडाय वनाय अखारा ।
साज बजन्त सुधार के ताल, अलापत रागनि राग अपारा ।
सुन्दर रूप सिंगार सुधारत, नाचत तान उठे झणकारा ।
लोचन चित्त अडोल सदा रूपि, जानत हैं जग झूठ पसारा ।३८।

माना गया है ।

३७. सुन्दर देवतों की टोली में शोभायमान इन्द्र जहां आकर नत मस्तक होकर वन्दना करते हैं, चक्रवर्ती, विमानिक देव, विद्याधर, महाराज, भुवनों के स्वामी देवतादि चरण वन्दना के लिये आते हैं । हाथों को जोड़ कर यश औ महिमा भरे वचनों को कहते हुए जय २ कार

बुलाते हैं, इस तरह होने पर भी जिन में मान नहीं आता वेही ऋषि राज कहाते हैं सो तिन्हें वन्दना करता हूं ॥ ३७ ॥

३८. देवता आकर नमस्कार करके स्थान को सुसंस्कृत (अच्छी प्रकार सजा) कर में अच्छी वासना वाली वस्तु छिड़काते हुए रङ्ग मञ्च बना कर बजाने वाले बाजों को ठीक करके ताल (समय की मात्राओं की ठकोर इत्यादि) के साथ बहुत सी राग रागनियों को गाते हैं। सुन्दर स्वरूप वाली वेश्यायें (काञ्चन कामिनियें) शृङ्गार करके नाच करने के समय तान (ऊंचे स्वर) को चढ़ा कर पाओं में पड़े हुए घुंघरुओं द्वारा झणकार (झणझण २ ध्वनि) कर रही हैं। ऐसी बातों को सामने होते हुए देख कर भी महा मुनियों की आंखें तथा चित्त सदा अडोल (चलायमान नहीं) रहता है, और वे इस संसार को सर्वदा नश्वर झूठ का फलाव

वक्र करे चित्त मित्र पणे, रिपु ठाग कुरूप सुमाख गमावे ।
लिन्द मयी भ्रम जाल ग्रही, गुण हीन करे नरकादि रुलावे ।
सम्यक चन्द्र ग्रसे तम सों, अहि श्याम महा विष दम्भ चढ़ावे ।
सो कपटारि पछारि हने, ऋषि अर्जव शूर सों चूर करावे ।३६।

समझते हैं ॥ ३८ ॥

३६. कपट मित्र के चित्त को टेढ़ा कर देता है, कपटी वैरी मित्र बगले के समान खोटे रूप वाला वञ्चक दिखाई देता हुआ विश्वास को गँवा देता है, इस प्रकार का गुण हीन पुरुष संशय के जाल में ग्रसा हुआ नरक

अन्तर बाहर शोभत हैं ऋजु, साँच विषै ऋषि साँचहि बोले।
साँच करै करतव्य महा ऋषि, साँच के मारग चाल अडोले।
दम्भ महा ठग मार लियो, जड़ चेतन भाव विभेद विरोले।
सो प्रणमों तिहुं काल विषै, ऋषि मोक्ष महापुर के सुख टोले॥४०।

आदि गतियों में भटकना है। सम्यग्प्रकाशना (नेक नीयती) रूप चन्द्रमा को कपट अन्धकार के समान ढक लेना है और काले सांप के समान दम्भ रूपी भारी विष को चढ़ा देना है, सो सरल हृदय वाला बलवान् महात्मा ऐसे कपट रूप शत्रु को दूर फेंक कर छिन्न भिन्न कर देना है ॥ ३९ ॥

४०. अन्दर और बाहर दोनों ओर से शोभायमान सरल और सच्चे श्रेष्ठ पुरुष

लोभ के कारण जाल फँसे. खग मीन मेर कपि कुञ्जर रोवे ।
चोर सहे दुःख बन्ध बधादिक. लोभ सों मानव किङ्कर होवे ।
लोभ विनाश करे शिव मारग. नीच गती गत नीच मुढ़ावे ।
लोभ निवार संतोष गहे ऋषि. तौं गुणमाल सुमेवक पावे ।८३।

सच को बोलते हुए. महा ऋषि सत्य के रस्ते पर अडोल चल कर कार्य को सत्य रूप से कर दिखाते हैं। महा ठग स्वरूप दम्भ को जिन्हों ने मार लिया है. और जड़ चैतन्य दो भेदों को भिन्न २ जानने वाले ऐसे साधु मुनि राजों को तीनों ही काल नमस्कार करता हूं

जानत भूमि निधान महाधन, औषध सिद्ध रसायण जूटी ।
देख नरेन्द्र विभूति महा सुख, देव विभूति अनूप अटूटी ।
चाह नहीं चित्त माहिं जगे कछु, अन्तर ते ममता सब छूटी ।
ज्ञान विराग सखा कर सङ्ग, ऐसे ऋषि लोभ तना सिर कूटी ।४२।

जो लोभ रूपी बड़े नगर के सुख को छूटते हैं ॥ ४० ॥

४१. लोभ के सबब जाल के नीचे कणों (दानों) को देख कर पक्षी फंस जाता है, मछली कांटा निगल कर मर जाती है, बन्दर भूमि में गड़े हुए कुज्जे में हाथ डाल कर और हाथी बनावटी कागज की हथिनी पर मोहित हो पुनः गहरे गढ़े में गिर कर रोते हैं और क्लेश (ताड़न) कैद तथा मृत्यु

हो सकते हैं और लालच से मनुष्य दास(नौकर)बनते हैं। लोभ कल्याण मार्ग का नाश करता हुआ नीच बनाकर नीच गति में ले जाता है, ऐसे लोभ का परित्याग कर सन्तोष को ग्रहण करने वाले उन ऋषियों के गुणों की माला को उत्तम सेवक पिरोते हैं ॥ ४१ ॥

४२. भूमि के अन्दर गड़ी हुई बहुत सी धनसम्पति तथा अच्छी तरह बनाई गई दवाई. बूटी से तैयार हुई २ रसायण (सुवर्ण) इत्यादिक वस्तुओं का ज्ञान होने पर तथा राजा और देवता की अखण्ड (न टूटने वाली) अनुपम सुख देने वाली बड़ी २ ऐश्वर्य शाली वस्तुएं तथा विभूतियां देखने पर भी समस्त ममता (अपने आप के स्वार्थपन) के दूर हो जाने पर जिन के चित्त में कुछ चाह पैदा नहीं होती, ऐसे ऋषिजन ज्ञान और वैराग्य को मित्र बना कर उन के साथ खेलते हुए लालच के सिर

अब सन्त भाव के अधिकार में –

कार्तिक पूर्णिम मास निशीथ, ससे वृष राशी बल भारी ।
मेघ कुहीड़ रजादि बिना, नभ स्वच्छ दिशा विमला तम हारी ।
त्यों चित्त भाव विशुद्ध सुशीतल, सन्त मुनीश्वर हैं व्रत धारी ।
वन्दत हों कर जोड़ सदा, भव सागर तारण के अधिकारी ।४३।

(अर्थात्–समता) को चूर २ कर देते हैं ॥ ४२ ॥

४३. जैसे कार्तिक के महीने पूर्णमासी की रात में वृष राशि का चन्द्रमा बल वाला होता है, बादल, धुन्द, धूलि इत्यादि से रहित आकाश तथा दिशाएं (तरफें) निर्मल होती हैं अन्धेरा दूर भाग गया होता है । तैसे ही

शुद्ध क्रियां करणोत्तम को. गमनागम भाषण भुञ्जन माहीं ।
शयन नासण बैठन में. उपदेश विषे शुभ हैं सब ठाहीं ।
जो कर्तव्य करें ऋषि उत्तम. सो शिव मार्ग में शिव राहीं ।
ते मुनि के पद पङ्कज को. कर जोड़ सदा प्रणमों गुण चाहीं ।४४।

अब धारण किये हुए (अर्थात घाती कर्म्मों के त्यागी) सन्त मुनि राजों का अन्तस्करण शुद्ध और अच्छी प्रकार शान्त होता है. ऐसे भव सागर पार लगाने वाले योग्य साधुओं के चरण कमलों में सदा दो हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हूं ॥ ४३ ॥

चन्दन नीर कपूर को लेपन, दाह हरे त्रिफला मल रोगं ।
वात विकार हरे त्रिकुटा त्रय, योग विरुद्ध हरे अघ भोगं ।
पुष्ट करे घृत और मिठास, महा बलवन्त विभावल भोगं ।
पोष स्वयं लय आतम को, इम साधु वियोग चले शिव लोगं ।४५।

---

४५. जिन्हों ने अपने करणोत्तम (कर्मेन्द्रिय-साधन) को स्वच्छ (साफ) कर लिया है । अर्थात् जो जाने आने, वचन बोलने, भोजन करने में, वस्तु के रखने, गिरने (डालने) बैठने और ज्ञानोपदेश देने में सब जगह शुभ भावना से प्रवृत्त रहते हैं । ऐसे महात्मा उत्तम रीति से—योग्य कार्यों को करके

कल्याणमार्गी मुक्ति पथ में चलते हैं. गुण की चाह करता हुआ उन साधुओं के चरण कमलों में हाथ जोड़ कर मस्तक नमाता हूं ॥ २४ ॥

२५. चन्दन पवित्र जल और कपूर इन तीनों के लेप से जलन (गर्मी=सड़न) दूर हो जाती है. त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आमला) पेट के रोग (मल) को दूर करता है. पीपर (मघ), मिर्च, सुगठी इन तीनों के मेल से बना हुआ त्रिकुटा का योग वात की बीमारी हरता है. ऐसे ही मन वचन काया का यह शुद्ध योग यह तीनों मिल कर सर्व शरीर के पाप रोग रूपी शोक को हर लेते हैं । घी, दूध, मीठे से बना हुआ बलवान बनाने वाली त्रिभावली नाम का खाद्य (खाने का पदार्थ) शरीर को पुष्ट (बलवान) कर देता है, इसी प्रकार साधु करणोत्तम त्रियोग को अपने अन्दर लीन कर स्वाद को साथ पुष्टता प्राप्त करके मोक्ष मार्ग में चलते हैं ॥ २५ ॥

भूप रहे थिर राज करें तिति. साथ लहै धन धान्य सवारी।
राज चय कारज कारक साथ वज़ीर. चमूपति दक्ष भण्डारी।
त्यों मुनिराज त्रियोग विचक्षण. वीर लिये संग संयम कारी।
कर्म खपाय सुराज लहो. थिर आगम अर्थ महानग धारी।८६।

---

८६. राजा लोग भी तो राज कर पृथ्वी धन सेना और सवारी को अपने वश में कर लेते हैं, परन्तु कब? जब राजाओं के पास चतुर बुद्धिमान वज़ीर (सलाहकार) सेनापति (सेना की देख भाल करने वाला अफसर) तथा चतुर खजाञ्ची (खजानची. खजाने की देख भाल करने वाला) हों तो। ऐसे ही मुनिराज मन. वचन. और काया के तीनों योगों को

ज्यों अवनी वहु खेद सहे, हिम शीत सहे अरु ताप सहे हैं ।
मार सहे परहार सहे, अपवित्र पवित्र समस्त गहे हैं ।
त्यों मुनि धार क्षमा सुक्षमा, सम आतम के रस रीझ रहे हैं ।
ताहि नमों तिहु योग करी, जिन राज के मारग सूर कहे हैं ।४७।

साध कर १७ प्रकार के संयम रूपी शूरवीरों को संग लेकर, कर्म्मों को नष्ट करके सदैव काल टिके रहने वाले सुन्दर स्वतन्त्रता रूप स्वराज्य को लेकर शास्त्रों के अर्थ (ज्ञान दर्शन) रूपी रत्न को धारण करते हैं ॥ ४६ ॥

४७. जैसे पृथिवी तीन गुणों को धारन करती हुई अनेक कष्टों को सहारती है.

अब वैराग्य गुण वर्णन :—

कामन भोग विलास तिते, तत्व नारि सुतादिक बन्धन त्यागी ।
जान अनित्य असार अपावन, देह तनी ममता जिह भागी ।
राज तजे सब साज तजे, पट खण्ड विभूति तजी चित्त जागी ।
ते श्रमणों परमारथ साधक, श्री जिन शासन माहिं विरागी ।४८।

हंसनन्द पशु की नन्दी चोर ग्रीस्म की भष महती है, सोम और नारो को सहाय कर अपवित्र (पगुन्ह=गन्दी) पवित्र (शुद्ध=साफ) सब प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण कर लेती है, वैसे ही पृथ्वी की तरह क्षमा के धारण करने वाले साधु जो आत्मानन्द स्वरूपी रस में मगन हो रहे

पर मन ऐसा धारणा गुण :—

वाजि कुरङ्ग पतङ्ग समीर तें, देवन तें मन वेग गती है।
चञ्चल चोर चहूं दिशि भ्रामक, ढीठ महा अति दुष्ट मती है।
सो समभाय किया अपने वश, पाप कुबुद्धि की चाल हती है।
संयम वन्त विराजत हैं, मन को सम धारण साधु यती है।४६।

हैं, और जिनेश्वर भगवान् के मार्ग में वीर कहे गए हैं उन को तीन योगों (मन, वचन, काया) से नमस्कार हो ॥ ४७ ॥

+४८. भोग विलास इत्यादि विषयों की तरफ इच्छा न रखते हुए, जिन्हों ने अपनी स्त्री पुत्रादिक के बन्धन को परे हटा दिया है, न रहने वाले इस

७८. घोड़े से हिरण की चाल अधिक है. हिरण से पतङ्ग (पक्षी विशेष) की, पतङ्ग से वायु की, वायु से देवता की, और देवता से मन की गति बहुत प्रबल वाली है. चपल तथा अच्छे काम करने में चोर चारों तरफ भ्रमने वाली दुष्ट मति है—सो पाप रूपी खोटी बुद्धि की चाल को नष्ट करके जिन्हों ने मन को वश कर लिया है. सो ऐसे मन को सम करके वश रखने

हो सकती है जब तक चन्द्रमुखी हंस की चाल चलने वाली स्त्री को एकान्त में नहीं देख पाते । और भी—

इदु राज मुखी मृग राज कटि गंजराज विराजित मन्द गतिः ।
यदि सा वनिता हृदये निहिता क जयः क तपः क समाधि विधिः । ९ ।

उपर्युक्त मुखयुक्त शेर की सी पतली कटि वाली हाथी के सदृश धीमी २ चाल से शोभायमान चाल वाली ऐसी स्त्री यदि हृदय में आ धसे तो कहां तप, कहां जप, और कहां समाधि का विधान चल सकता है। अर्थात यह सब बातें रफू चक्कर हो जाती हैं-सम्पादक ॥

अथ वचन समाधारणा —

मौन रहे न कहे मुख आश्रव, संवर कारण बोलन वाणी।
तोल के बोलन बोल निहारण, जीव दया उपदेश कहानी।
जैन के बैन सों प्रेम धरें चित्त, चैन भयो सब ही विध जानी।
ते प्रणमों तिहुं काल विषे, तिन की महिमा तिहुं लोक बखानी।५१।

है। इसी प्रकार मूर्ख मनुष्य बुद्धिमान् पुरुष के साथ रहकर चतुर कहलाने लग जाता है। वैद्य (हकीम) ज़हर को अच्छी दवाई और साधु खोटों को उत्तम बना देते हैं, वैसे ही दुष्ट मन को ज्ञानवान् करके सुधार लेते हैं, उन दीर्घदर्शी साधुओं के गुणों को सेवक जन

जिन्हों ही अपने उपदेश और कथा को कहते हैं । और जैन सिद्धान्त जिन वाणी में चित्त को दृढ रखते हुए सर्व प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर आनन्दित रहते हैं, उन साधुओं को नमस्कार करता हूं तीनों काल (भूत, भविष्यत, वर्तमान) जिन की कृत्ति का गुण गाण लोग किया करते हैं ॥ ५१ ॥

५२. शरीर के सारे ही बड़े और छोटे अङ्गों को सिकोड़ कर दृढ़ आसन (बैठक) करके चंचलता का परित्याग कर दिया है, आने तथा जाने इत्यादि कार्यों में यत्न युक्त अपने साधु सम्प्रदाय की रीति के अनुकूल अपना स्वरूप बनाया हुआ है । देह का । कष्टों को झेल उत्तम तप करके मोक्ष रूपी बड़े नगर में जाते हैं, जिन के अन्दर इस प्रकार काया के वश रखने के गुण रहते हैं तिन के चरणों में चित्त लगा कर वन्दना

अब दर्शन गुण का वर्णन –

शुद्ध दशा धर दर्शन उत्तम, सत्य प्रतीत जिनागम माहीं।
यक्ष मृगा सुर नाग चलावत, तौ न चलैं दृढ़ हैं शिव गाहीं।
धीरज मण्डप खण्ड कुखण्डन, पाप मृषा मत के गिरि ढाहीं।
सम्यक वन्त महन्त महामुनि, सेवक तारत हैं गहि बाहीं ॥५४॥

के धारक कितने ही अंग (मूल शास्त्रों के सिद्धान्त स्वरूपी शास्त्र) और उपाङ्गों (इन्हीं सिद्धान्तों के विशेष व्याख्यान स्वरूप विवरणों) का वर्णन करने वाले हैं। कितने ही बारह अङ्गों (शास्त्रों) के धारण करने वाले ऋषि जो सब ऋषियों के स्वामी हैं, ज्ञान ही जिन का चिह्न है, तिन्ह मुनियों के

और नागकुमार गरुड़ सभी मिलकर भी उन को चलायमान नहीं कर सकते जो मोक्ष मार्ग के गमन पर दृढ़ हैं। विशाल धैर्य धारी हैं वे पर्वत के समान पाप और मिथ्या ज्ञान को बुरी तरह नष्ट भ्रष्ट (तोड़ फोड़) करके गिरा देते हैं. ऐसे अच्छे बड़े श्रेष्ठ महात्मा सेवक जनों को बहते हुए की बांह पकड़ने के समान तार कर संसार समुद्र से पार कर देते हैं ॥ ५४ ॥

५५. आवश्यक शुद्धि पूर्वक प्रतिक्रमणादि करते हुए गुरु वन्दना को कर सिद्धान्त (शास्त्रों) का उच्चारण करते हैं फिर सिद्ध भगवान का ध्यान करके १२ प्रकार की तप विधी के साथ आत्मा का साधन करते हुए शुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हैं. और शिक्षा देने वाला शिष्य के पूछने पर उन की जांच करते हुए जिन शास्त्र द्वारा उपदेश दे उन की मिथ्या

अब २२ क्षुधादि परीसह जीतने के गुण –

भूख महा बलवन्त भई नर, सिंह फणी गज रीछ नवाए।
दाम भये पर छन्द नचे, बल हीन भये पर हाथ बिकाए।
काल अकाल सुभक्ष कुभक्ष, सुजात कुजात गिने न गिनाए।
सो मुनिराज लई जित के. तिन के गुण सेवक भाष सुनाए।५६।

मति को दूर करके फिर उसी प्रकार रात के समय प्रति क्रमणादि पारमार्थिक व्यवहार करते हैं और यों संयम आराधन कर साधु मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५५ ॥

५६. भूख बड़ी बल वाली बनी है जो मनुष्य. सिंह, सांप, हाथी. रीछ इन

भूख त्रिषा गरमी सरदी, इम ही बहु भांति के सङ्कट पावें।
कर्म उदै फल मानत हैं, ममता भर भोगन चित्त न चावें।
जानत हैं क्षण भङ्गुर है, तन ताहि विषें ममता नहिं लावें।
धारत देह विदेह भये जन, तो गुण देव पती मुख गावें ॥५.७॥

सब जन्तुओं को अधीन कर देती है, दास बन पराधीन होकर नाचने बल हीन हो पराये हाथों में बिक जाते हैं। समय असमय खाने योग्य अभक्ष्य (न खाने पीने योग्य पदार्थ मांस मदिरा आदि), भली जाति (जिन के आचार शुद्ध हों) और बुरी जाति की भूखा मनुष्य भूख से त्रस्त होकर विचार नहीं कर सकता (भले बुरे की तमीज़ नहीं कर

अब मरणान्तोपसर्ग सहन गुण –

चाहत जीव सभी जग जीवन, देह समान नहीं कछु प्यारो ।
संयम-वन्त मुनीश्वर को, उपसर्ग भवै तन नाशन हारो ।
तो चिंतवें हम आतम राम, अखण्ड अबाधित ज्ञान भण्डारो ।
देह अचेतन सो हम तो नहिं, सत चिदानन्द रूप हमारो ।५८।

पूर्व–साधु प्रति २७ मूल गुण सम्पूर्ण ॥

सकता) सो ऐसी भयानक त्रासदायक भूख को जिन मुनि महात्माओं ने जीत लिया है उन महापुरुषों के यह दास गुण गायन करता है । ।५६।

५७. भूख, प्यास, गरमी, सरदी ऐसे बहुत तरह के क्लेश पाने पर भी, कर्म्म

पावस की चउमासि विषै, निर्दोष सुथानक माहिं बसेगें ।
नारि कुलादि पशू न रहैं, जहिं शुद्ध प्रलेहण योग चंगेगें ।
धार तहां उपवास अभिग्रह, पालत चारित्र बसें गुरु सेगें ।
भव्यन कों उपदेश कहैं, मुनि मोद लहैं नर नारि वनेगें ।७६।

फल प्रभाव मान कर सभी अवस्थाओं में समान भाव को रखने वाले, चित्त से ही भोग लिप्त होना नहीं चाहते। वे इस शरीर को थोड़े समय में ही नष्ट हो जाने वाला जानकर इस में ममत्व भाव (आसक्ति) ही नहीं रखते, देहधारी होते हुए भी बिना देह वाले जैसे बने रहते हैं तभी तो इन्द्र जैसे ऐश्वर्य

शाली भी उन का गुण गाया करते हैं ॥ ५७ ॥

५८. सभी प्राणी संसार में जीना ही चाहते हैं, काया जैसी और कोई चीज प्यारी नहीं. संयम मे रहने वाले महात्माओं को जब शरीर के नाश करने वाला मरणान्त कारी कष्ट होता है। तो वे विचारते हैं कि हम तो आत्मा रूप से इस शरीर रूप (भाजन बरतन) मे रमने (खेलने) वाले अटूक, रोक में न आने वाले, और ज्ञान से भरपूर हैं. शरीर तो निश्चय ही जड़ है. सो तो हम हैं नहीं, हमारा स्वरूप तो सदैव ही रहने वाला चेतन (ज्ञान) मय और सुख (आनन्द) मय है ॥ ५८ ॥ यहां तक २७ साधु मूल गुणों की व्याख्या हुई अब आगे साधु प्रति उत्तर गुणों का आरम्भ होता है ॥

५९. वर्षा ऋतु के चातुर्मास में साधु निर्दोष स्थानक में निवास करते हैं.

आठहिं मास विहार करैं, अपि देश विदेश विषैं उपकारी ।
भूमि करैं तृण काठ के ऊपर, आसन सैन अचित सवारी ।
आगम सार विचार उचार के, भव्यन की जिन नींद उचारी ।
काढ़ मृषा मति कुपथ की, जिन धर्म निकेतु दिखावन भारी।८०।

यहां स्त्री, नपुंसक (खुसरा), पशू न हों वहां पर मन, वचन, काया के शुद्ध योगों से युक्त देख भाल करते हुए उपवास (व्रत) अभिग्रह (प्रण) कर्तव्य को पालन करते हुए निवास करते हैं और श्रेष्ट पुरुषों को उपदेश करते हैं, जिस को सुन कर स्त्री तथा पुरुष सुख को पाते हैं ॥ ५९ ॥

६०. इस के उपरन्त साधु आठ महीने देश विदेश में भ्रमण करते हुए

ग्रीष्म में रवि तेज सहैं हिम, शीत सहैं नहिं पावक सेवें।
पावस में उपवास धरें विधि, तुच्छ आहार महा मुनि लेवें।
द्वादश मास विषें तपस्या कर, ज्ञान-विराग विषे चित्त सेवें।
संयम साध आराधि महा पद, सेवक को सुख सम्पति देवें।६१।

उपकार करते रहते हैं पृथिवी, सूखे घास, अथवा लकड़ी के निर्जीव सुथरे आसन पर मौन बैठते हैं। शास्त्रों के रहस्य को विचार और श्री मुख से बोल संसारी जनों को नींद से जगा सावधान कर, मिथ्या ज्ञान के कूप से निकाल जिनेश्वर देव के धर्म्म की महाध्वजा को दिखाते हैं।६०।

६१. ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ़) में धूप, हेमन्त (मार्गशीर्ष पौष) में जाड़े

मातु गिनें नहिं रञ्च भगापति. दीन भनौं मन मन्द न पागें।
ज्यों तरुणा ऋतु पाय सुभाय सु. अम्बुद जङ्गल +माहिं नगांगें।
जीवन आस नहीं जिन के अरु. काल को त्रास नहीं चित्त दागें।
ते मुनि के पद वन्दन तें जन. पाप पुरातन के दल भागें।८२।

(पाले) को सहन करते हुए आग नहीं तपते. वर्षा (श्रावण. भाद्रपद) में बहुत विधि से उपवास (व्रत) करते अथवा थोड़ा सा शुद्ध (निर्दोष साधु के निमित्त न बना हुआ) अन्न महा मुनि लिया करते हैं। बारहों महीने तपस्या करके ज्ञान ध्यानमें लवलीन रहते हैं. वैराग्यवान चित्त रख और संयम में रह महापद (मोक्ष)

+टिप्पणी–किसी २ प्रति में माहिं की जगह (भौन) भी देखने में आया है, जिस का अर्थ है मकान।

चाह नहीं निज कीरति की, मनमान सुपूजन आदर केरी।
निन्दन वन्दन एक समो, ममता सजनी गुण रूप चंगेरी।
लोक विषे नहिं मोह धरें, पर लोक अवांछित मेट अंधेरी।
है चट आतम राम महा रस, ते मुनि वन्द मिटे भव फेरी।६३।

का आराधन करते रहते हैं और सेवा करने वाले गृहस्थी जनों को आत्म स्वरूपी सुख की भारी सम्पदा देते हैं॥ ६१॥

६२. साधु राजा और सामान्य प्रजा दरिद्री तथ धनाढय सब को एक ही दृष्टि से देखते हैं। जिस प्रकार स्वभाव से ही वर्षा ऋतु में वर्षा का जल जङ्गलों और फूलों वाले बगीचों में तथा मकानों में एक सरीखा

पड़ता है। जिन के चित्त में तीनों ही [illegible] नहीं और [illegible]

मान का भी भय नहीं है, उन मुनियों के चरणों की वन्दना करके

मनुष्य पूर्व जन्मों की एकत्रित की हुई पापों की राशि को नष्ट कर

डालते हैं ॥ ६२ ॥

६३. जिन्हें ख्याति (नामवरी) की चाह नहीं और ना ही अपनी प्रतिष्ठा, पूजा तथा स्वागत (आओ भगत) कराने की इच्छा होती है, निन्दा और स्तुति को एक सा मानने वाली गुण रूप में अच्छी समता के समान सखी जिन्ह के संग है। इस जगत के प्रति मोह न रखते हुए, स्वर्ग लोक के सुखों की भी इच्छा न कर अज्ञान को मिटाते हैं, जिन्ह के चित्त में आत्म आनन्द महा रस है उन को वन्दना करने से इस संसार में आवागमन रूपी बन्धन हट जाता है ॥ ६३ ॥

वीर महा तप ते उपजे चित, औध प्रकाश कि तेज दिनेशा ।
वैक्रिय ऋद्धि भई सुरमी, अरु तैजस वन्त महा बल लेशा ।
श्राप अनुग्रह सिद्ध भई, सुपुलाक घनी विधि शक्ति प्रवेशा ।
जो न विकार करे थिर ता गहि, सो मुनि वन्दत वृन्द सुरेशा ।६४।

---

६४. अति दुष्कर तप करने से हृदय में अवधि ज्ञान पैदा होता है, और देवता जैसी वैक्रय ऋद्धि प्राप्ति तथा महा बल वाली तेजो लेश्या पैदा हो जाती है। श्राप अथवा वर देने का वचन सिद्ध हो जाना है तथा ×सुपुलाक लब्धि और अनेक लब्धियों (विभूतियों आत्म शक्ति विशेष) की प्राप्ति हो जाती है ।

× [illegible] की सेना पर विजय पा लेने की शक्ति का पैदा हो, उस का नाम (सुपुलाक लब्धी है)

मत्त मतंग मृषा मति के नर, गाजत ज्ञान को गाग उचारें।
श्री ऋषिराज महाबल केहरि, गाजि सिद्धान्त को नाद उचारें।
भाग चले मतिमन्द महा पशु, ज्यों गण केशरि ते रिपुहारे।
वादि जयी जगदीश के नन्दन, ते ऋषि जी रखवाल हमारे।६५।

पर साधु निश्चल भाव से रह कर इन से (आत्म शक्ति विशेष की प्राप्ति पर) १अहंकृति के भाव को प्राप्त नहीं होते ऐसे मुनि देवताओं के समूह द्वारा वन्दन किये जाते हैं ॥ ६४ ॥

६५. कुबुद्धि वाले मनुष्य मद-मस्त हाथी की तरह २कोलाहल करते हुए

टिप्पणी- १अभिमान (शेखी)। २शोर शराबा।

आतम राम अनूप अमूरत, आदि अनादि अनन्त विलासी ।
चेतन अङ्ग अभङ्ग चिदानन्द, रंग न रूप मई गुण राशी ।
व्यापक ज्ञायक नित्य विराजत, मो थिर ध्यान विषे अविनाशी ।
है जिनकी तिनकी गुण माल, रची चित लाय सुबुद्धि प्रकाशी ।६६।

ज्ञान रूपी ३वाटिका को उजाड़ते फिरते हैं, और जब श्री ऋषि राज महा बलवान् शेर की भांति गर्जते हुए, शास्त्र रूपी ४नाद की गर्जना करते हैं । तब पशु के समान मन्द बुद्धि मनुष्य भागने लगते हैं । ज्यों वासु देव की लड़ाई में वैरी भाग निकलते हैं, शास्त्रार्थ में जीतने

३बगीचा। ४शब्द, कण्ठ, नाभि से उठने वाली गम्भीर आवाज।

ज्यों नग के गुण दोष लखै, नग-पारखि मांहि अगांह निहारै।
दक्ष सराफ लखे कसि कञ्चन, खोट मिटाय के शुद्ध संवारै।
ज्यों रज शोधक धूल थकी, धन काढ़ लये विधि मों रज टारै।
त्यों जड़ चेतन भिन्न करे, गुण दोष लखे मुनि आप संभारै ॥८७॥

वाले जिनेश्वर देव के शिष्य वे ऋषि हमारी रक्षा करने वाले हैं ॥८५॥

८६. १रमणीक आत्मा उपमा और २आकार रहित सदैव काल से आदि अन्त रहित लीलामय, चैतन्य, जिस का अङ्ग भङ्ग न हो सके, ज्ञानमय तथा सदा आनन्द स्वरूप, रङ्ग रूप से ३पृथक गुणों का ढेर है। मोर शरीर में

१शोभायमान। २स्वरूप (शकल)। ३अलहदा।

ज्ञान सुनीर भरी सलिला सुर, धेनु प्रमोद सुखीर निधानी ।
कर्मज व्याधि हरन्त सुधा अघ, मैल हरन्त शिवा कर मानी ।
इन्दु सिद्धान्त कि ज्योति खिडी, श्रुति देवस्वरूप महासुख दानी ।
लोक अलोक प्रकाश मयी, मुनिराज वखानत हैं जिन वानी ।६८।

फैला हुआ जानने वाला और सर्वदा काल रहने वाला, नाश रहित, निश्चल ध्यान में चित लगाए हुए साधुओं के लिये उत्तम बुद्धि के साथ तिन की ही गुण माला की रचना करके वखान (कथन) करता हूं ॥ ६६ ॥

६७. रत्नों के परखने वाला (जौहरी) जैसे रत्न के गुण दोषों को जान सच्चे झूठे का

शासन देव विषें मनवा उडु, वृन्द विषें शशि मङ्गलकारी ।
भूप समूह विषें वर चक्र-पती, प्रगटे बल केशव भारी ।
नागन में धरणीन्द्र बड़ो, अरु है असुरें चमरेन्द्र विचारी ।
त्यों जिन शासन संघ विषें, मुनिराज दिपें श्रुतिज्ञान भण्डारी।८९।

निर्णय कर देता है. अथवा चतुर सराफ सोने को घसौटी पर परख कर और उसके खोटको दूर करके शुद्ध कर लेता है।जिस प्रकार रजशोधक न्यारिया युक्ति से मिट्टि में से चान्दी सोना निकाल धूल अलग कर देता है. वैसे ही महात्मा गुण दोष की पहचान करते हुए, जड़ (शरीर आदि पौदगलिक वस्तुएं) और चेतन (विशुद्धात्मा जिस का ६६ वें छन्द में विवेचन किया

धातुन में कलधौत बड़ो, रत्नों बीच भाषत है वर हीरा।
कुञ्जर मांहि कह्यो हरि को इभ, केसरि सिंह महा बल वीरा।
फूलन में अरविन्द बडो, नग कम्बल मों नहिं दीसत चीरा।
त्यों सब मंत्र विषें श्रुति चारित, धारि मुनीश्वर शोभत धीरा।७०।

गया है) का पृथक्करण करते हुए अपना आप सुधार लेते हैं (मुक्ति प्राप्त करते हैं) ॥ ६७ ॥

६८. सुन्दर जल से भरी हुई ज्ञान रूपी नदी कामधेनु के सदृश हर्ष रूपी दूध से परिपूर्ण, कर्म्म से उत्पन्न होने वाली पाप रूपी व्याधि को दूर करने में अमृत के तुल्य कल्याण कारी मानी गई है। और चन्द्रमा का शीतल

शोभित देव विषै मघवा उडु, वृन्द विषै शशि मङ्गलकारी।
भूप समूह विषै वर चक्र-पती, प्रगटै बल केशव भारी।
नागन में धरणीन्द्र बडो, अरु है असुरें चमरेन्द्र विथारी।
त्यों जिन शासन संघ विषै, मुनिराज दिपै श्रुतिज्ञान भण्डारी॥८६॥

निर्णय कर देता है, अथवा चतुर सराफ सोने को घसौटी पर परख कर और उसके खोटको दूर करके शुद्ध कर लेता है। जिस प्रकार रजशोधक न्यारिया युक्ति से मिट्टि में से चान्दी सोना निकाल धूल अलग कर देता है, वैसे ही महात्मा गुण दोष की पहचान करते हुए जड़ (शरीर आदि पौदगलिक वस्तुएं) और चेतन (विशुद्धात्मा जिस का ६६ वें छन्द में विवेचन किया

धातुन में कनधौत बड़ो, रत्नां बीच भाषत है वर हीरा।
कुञ्जर मांहि कह्यो हरि को इभ, केसरि सिंह महा बल वीरा।
फूलन में अरविन्द बड़ो, नग कम्बल मों नहिं दीसत चीरा।
त्यों मत मंय विषें श्रुति चारित, धारि मुनीश्वर शोभत धीरा।७०।

गया है) का पृथक्करण करते हुए अपना आप सुधार लेते हैं (मुक्ति प्राप्त करते हैं) ॥ ६७ ॥

६८. सुन्दर जल से भरी हुई ज्ञान रूपी नदी कामधेनु के सदृश हर्ष रूपी दूध से परिपूर्ण, कर्म्म से उत्पन्न होने वाली पाप रूपी व्याधि को दूर करने में अमृत के तुल्य कल्याण कारी मानी गई है। और चन्द्रमा की शीतल

शासन माहिं किरीट सुमेरुन, है तिलकोपम केतु अमोले।
वारिधि दीप जहाज मणी, मलयागिरि में निज कारज टोले।
वेन नियामक ज्यों भट में जग, ज्ञान कला तुलिया कर तोले।
हन्स कपोत मरिगंदु अलीवन, जैन यती गुण आगम बोले ।६९।

चान्दनी के समान खिली हुई देव स्वरूप श्रुतवाणी महा सुख-दायक, लोक और अलोक (विद्वान और मूढ दोनों) में उजाला करने वाली है ऐसी दिव्य वीतराग प्रतिपादित जिन-वाणी का मुनिराज कथन करते हैं ॥ ६८ ॥

६९. देवताओं के बीच इन्द्र, तारा गणों में चन्द्रमा, राजाओं में चक्रवर्ती सम्राट

चान्द्र चन्द्र शोभते हैं। और नाग कुमार देवों में धरणीन्द्र, असुरों में चमरेन्द्र शोभता है, तद्वत श्री तीर्थंकर भगवान द्वारा स्थापित जैन संघ में अलौकिक ज्ञान के भण्डार मुनिराज शोभा पाते हैं ॥ ६९ ॥

७०. सर्व धातुओं में जैसे सुवर्ण मुख्य है और रत्नों में हीरा, सब हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हाथी और जङ्गली पशुओं में बलवान् केसरी सिंह प्रधान होता है। फूलों में कमल (पद्म) का फूल और सब कपड़ों में जैसे रत्न कम्बल श्रेष्ठ होता है वैसे ही साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ के बीच शास्त्र ज्ञान और चारित्र के धारण करने वाले धैर्यवान् मुनीश्वर शोभायमान हो रहे हैं ॥ ७० ॥

७१. जिन शासन में साधु महात्मा सुन्दर मुकुट, सेहरे तिलक, और ध्वजा की तरह शोभा देते हैं। अर्थात उत्कृष्ट हैं। संसारी जीवों के लिए

समुद्र में जैसे द्वीप का आश्रय होता है वैसे संसार समुद्र में आधार हैं पार जहाज की तरह संसार समुद्र से पार करने वाले हैं। चिन्तामणि रत्न की तरह चिन्ता हरण करने वाले तथा चन्दन के समान शीतल स्वभाव और स्व पर कल्याण करने वाले हैं। वैद्य की तरह त्रिताप (अधिभौतिक शरीर सम्बन्धी. अधिदैविक भूचाल दुर्भिक्ष आदि. अध्यात्मिक-रूहानी) और मिथ्यात्व रोग का इलाज करने वाले. निज़ाम (राजा) की तरह न्यायशील धर्म रूपी रथ को चलाने वाले. कर्म रूपी शत्रुओं से युद्ध करने वाले वीर. ज्ञान रूपी तराज़ू से वस्तुस्वरूप को तोलने वाले—हंस की तरह सत्यासत्य का निर्णय करने वाले-कबूतर की तरह एकान्त सेवी और भावुक. भरिगड पक्षी की तरह चौकन्ने और भौंरे की तरह जिनेन्द्र भक्ति में मस्त ऐसे सभी गुण साधुओं के लिए

सूरि प्रताप शशी चित शीतल. सिन्धु गम्भीर सुमेरु अडोल ।
कञ्ज अलेप सुकम्म वशीन्द्रिय. वाक कहे जन अमृत बोल ।
वारण धीर अभीत मृगाधिप. ओट विना नभ श्री गुण टोल ।
वायु अबन्ध धरा सह ने सब. जैन यती गुण आगम बोल ।७२।

शास्त्र मे कथन किए गए हैं ॥ ७१ ॥

७२. सूर्य की तरह प्रतापी चन्द्रमा सा ठण्डा चित्त समुद्र की सी गम्भीरता सुमेरु पर्वत के समान निश्चल मन. कमल पुष्पवत्त निर्लेप (अनासक्त) कछुए की भांति इन्द्रियों को वश करने वाले परिषदा में मानों अमृत तुली वाणी से तृप्त करने वाले. हाथी के तुल्य धैर्यशाली शेर के सदृश निर्भय. आकाश

साधि सन्त एक पद (गद्य) :—

साधन साध सदा मन की गति, पंच महाव्रत की विधि साधन।
साध न राचत भोग विषै सुख, वांछित काम कला नहिं साधन।
साधन है करणी हरणी दुःख, साचरणी वर ज्ञान को साधन।
साध नरोत्तम के पग की रज, भाल धरो सब कारज साधन।७३।

की तरह विस्तृत गुणों के भण्डार, वायु की भांति स्वतन्त्र पृथ्वी के समान सहन शील इस प्रकार के सभी गुण जैन साधुओं में शास्त्र में कहे गए हैं ॥ ७२ ॥

७३. साधु सदैव काल मन की गति को साध कर (मन वश करते हैं)

साधन राज के साज विषै गति. बानिज को व्यवहार न साधन ।
साधन भूमि कृषान क्रिया. विच पोष पशु क्रय विक्र न साधन ।
साधन द्रुत कला कुशलतम. वाद विवाद निषेध न साधन ।
साध नरोत्तम के पद की रज. भक्ति धरो मन कारज साधन ।७२।

पञ्च महाव्रतों के नियमों का पालन करते हैं, और भोग विलास के स्थानों से विमुख (परे) रहते हैं । युग वर्णक और काम (विषय भोग) सम्बन्धी बातों को नहीं करते । दृढ़ हृदय करके मौन को धारने वाले स्वच्छ ज्ञान का अभ्यास करते हैं, ऐसे साधन निष्ठ उत्तम पुरुषों के चरणों की धूलि माथे पर लगाने से सभी कामों की सिद्धि

[illegible] [illegible] पृ. ५८ (नट) :—

साधन साध सदा मन की गति, पंच महाव्रत की विधि साधन ।
साध न राचत भोग विषै सुख, वांछित काम करता नहिं साधन ।
साधन है करुणा हरणी दुःख, सावरणी वर ज्ञान को साधन ।
साध नरोत्तम के पग की रज, भाल धरो सब कारज साधन ।७३।

की तरह विस्तृत गुणों के भण्डार, वायु की भांति स्वतन्त्र पृथ्वी के समान सहन शील इस प्रकार के सभी गुण जैन साधुओं में शास्त्र में कहे गए हैं ॥ ७२ ॥

७३. साधु सदैव काल मन की गति को साध कर (मन वश करते हैं)

साधन राज के साज विषै गनि, वानिज को व्यवहार न साधन।
साधन भूमि कृषान क्रिया, विन पोष पशू क्रय विक्रै न साधन।
साधन द्यूत कला कपटातम, वाद विवाद निषेध न साधन।
साधन नर्गातम के पद को रज, भाल धरो सब कारज साधन।७४।

एवं महाव्रतों के नियमों का पालन करते हैं, और भोग विलास के साधनों से विमुख (परे) रहते हैं। सुख तर्क और साम (विषय भोग) सम्बन्धी बातों को नहीं करते। दुःख दूर करके मोक्ष को साधने वाले अनेक ज्ञान का अभ्यास करते हैं, ऐसे साधन निष्ठ उत्तम पुरुषों के चरणों की धूलि माथे पर लगाने से सभी कामों की सिद्धि

साधक हैं शिव मारग के जन, स्वारथ चाहि सदा पथ साधक ।
साध कथा तप संयम के रस, रीझ रहें परमारथ साधक ।
साध कहैं उपदेश तजो अघ, होइ पुनीत बनो शिव साधक ।
साधक हैं जगदीश के नन्दन, बन्दन तें सब कारज साधक ।७५।

होती है ॥७३॥

७४. साधु राज्य ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रखते और वनिज व्यापार भी नहीं करते, कृषि (खेती बाड़ी) तथा पशु पालने वा बेचने बिकवाने के कार्य्य को भी नहीं करते । इन सम्बन्धी (इधर उधर से खबरें निकालने के) काम नहीं करते और विद्रोह उत्पन्न करने

भाषत ज्योतिष वैद्यक में रस. मंत्र न यंत्र न तंत्र प्रकाशें।
और वृत्तासन थंभन मोहन. केलि कुतूहल रीति न भासें।
नाचन गावन ताल बजावन. ख्याल मभी तज ज्ञान अभ्यासें।
ते मुनिराज के पांय धरों शिर. बुद्धि जगे अघ अन्ध विनासें।७८।

---

७८. ज्योतिष शास्त्र के विधान और वैद्यक विषयक औषधियां. मन्त्र यन्त्र और तन्त्र (टोना टामा. धूनी धूप) इत्यादि के विधि विधान नहीं बतलाते। आवाहन (देवता को बुलाने की विधि) स्थम्भन (मन्त्र शक्ति से किसी को हिलने जुलने चलने न देना. बांध देना). मोहन (मन्त्र शक्ति से वश करना) आदि और केलि (काम शास्त्र) तथा विस्मयकारी (अचम्बे

त्रिमि कै हरि कै तड़ कै मम कै, मृग कै गण कै नटि कै शत्त कै ।
वन कै विच कै किङ्कि कै मुग्कै, मुन कै अहि कैम टिकै पत्त कै ।
तम कै भर कै शनि कै ऋवि कै, न टिकै दिन कै पतिकै भल्लकै ।
मुनि कै तप कै बत्त कै त्तम कै, अघकै तिणकैजु मुकै जलकै ॥७८॥

रूप घोर अन्धेरा नष्ट हो जाता है ॥ ७६ ॥

७७. स्त्री, पुत्र, मित्र के द्वारा साधु महात्मा नहीं रुकते और मनुष्य मे धन द्वारा या छल मे भी साधु महात्मा नहीं चूकते-(अर्थात् स्त्री मित्र आदि द्वारा रोकने पर और धन आदि के प्रलोभन से अथवा छल से साधु महात्मा सत्पथ से विचलित नहीं होते) देखना और मनुष्य के मुख

शम में दम में जप में तप में. व्रत में गुण में इन में जुग में।
रिस में मद में छल में लुभ में. अघ में गुन में विष में नग में।
सुख में दुःख में घर में वन में. नग में रज में मच में लव में।
मन में वच में तन में शुभ में. प्रग में ऋषि में प्राण में जग में।७९।

पाप तृण (सूखी घास) के सदृश जल कर समाप्त हो जाता है ॥ ७८ ॥

७९. सम भाव में. विषयों के दबाने में. बार २ नाम स्मरण. काया साधन. नियम और गुण इन में साधु रहते हैं. क्रोध. अभिमान. कपट. लालच. पाप. काम क्रीडा विषयों ≈ (स्त्री प्रसंग) से दूर रहते हैं। सुख. दुःख. घर. जंगल. पहाड़. हीरा. मिट्टी सभी एक समान समझ

एक से सोलह पर्यंत जिन्हा कथन—मत्त गयन्द छन्द ॥

आतम एक स्वरूप लियो लखि, एक महा मन को वश कीनो।
एक असंग उदास रहे जग, एक विराग महा रस भीनो।
छांड़ दियो मग ओफड़ को इक, मोक्ष महा मग में चित दीनो।
ते प्रणमों इक चित्त सदा ऋषि, आप संभाल महा यश लीनो।८०।

मन वचन काया से शुभ भावनाओं में रमने वाले महात्माओं को जगत में हर समय वन्दना नमस्कार होती है ॥ ७६ ॥

८०. जिन साधुओं ने एक आत्मा के स्वरूप को ग्रहण किया, एक मन को आधीन कर लिया, एक संग को छोड़ उदासीन रहने और एक

एक ही दृष्टि मों चाल चलें, अहि त्यों मुनिराज सदा इकचाली ।
राग विराग समान रहें इक, सर्व तजी इक मोक्ष सुमाली ।
ज्ञायक पूरण सर्व विषें नभ में, सब लोक लखें गुणमाली ।
आतमराम लखे नभ से पर, चेतनवन्त अशून्य विशाली ।८१।

वैराग्य रूपी बड़े रस में भीगे रहते हैं । उलझने के रास्ते (संसार समुद्र में फंसाने वाले) को छोड़ एक मोक्ष के बड़े मार्ग में चित्त लगाया है, एक चित्त होकर उन को नमस्कार करता हूं जिन महात्माओं ने अपने आप को सम्भाल (काबू) कर महा यश को प्राप्त किया है ॥ ८० ॥

८१. जैसे सर्प एक ही नजर से सीधी चाल चलता है, वैसे ही मुनिराज सदा एक

शुक्लध्यान (केवलज्ञान रूप) को प्राप्त कर के आकाश में स्थित सर्व लोक अलोक को देखते हैं तथा एक आत्मा के स्वरूप को जानते हैं. जो आकाश की तरह विशाल परन्तु चैतन्य (ज्ञान वाली) और अशून्य है ॥ ८१ ॥

८२. तीसरे सनत्कुमार देवलोक से लेकर ऊपर छब्बीसवें देवलोक तक केवल पुरुष वेद वाले देव ही उत्पन्न होते हैं। नवमें आनत देवलोक से लेकर ऊपर छब्बीसवें देवलोक तक सब विमानों (देव भवनों) का एक ही श्वेत रंग है। अनुत्तर विमानों (२२वें देवलोक विजय, २३वें देवलोक विजयंत. २४वें देवलोक जयंत, २५वें देवलोक अपराजित और २६वें देवलोक सर्वार्थ सिद्ध) में केवल एक सम्यक् दृष्टि होती है। सर्वार्थसिद्ध छब्बीसवें देवलोक (लवसत्तम) में एक भव वाले अर्थात् एक मनुष्य

या जग में विरगाम कहाँ मुनि, जीव अजीव के भेद सुनावें ।
सर्वव्रती अरु देशव्रती मुनि, दो विधि साधक रूप बतावें ।
अन्त समै मरणा विध भान्ति को, बाल अबाल कु रूप दिखावें ।
ता पद कंज अली जन के दृग, दो श्रुत धार सुनें शुभ भावें ।८३।

जन्म धारण कर उसी भव से मोक्ष प्राप्त करने वाले ही देव उत्पन्न होते हैं (अर्थात् देवलोक के देवों को लवसत्तमी कहा जाता है क्योंकि यदि पूर्व मनुष्य भव में उन की आयु सात लव और होती तो उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लेते—भगवती सूत्र) ऐसे हैं सब जानें मुनि महात्मा ज्ञान से जानते हैं और एक आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन करते हैं ।

ऐसे साधु महात्माओं की कृपा से एक बार भी सेवा और ध्यान करने से मनुष्य उत्तमगति को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ८२ ॥

८३. इस संसार में जीव और अजीव दो राशि कही गई हैं, जिन से संसार भिन्न है। मुनिराज जीव के ५६३ भेदों का और अजीव के ५६० भेदों का विवेचन करते हैं। संसार समुद्र से पार होने के लिए सर्वव्रती (साधु धर्म) और देशव्रती (श्रावक, गृहस्थ धर्म) यों साधकों के दो भेद फरमाते हैं। अन्तिम समय बाल मरण और पण्डित मरण (व्रत प्रत्याख्यान धारण कर पूर्व कृत पापों की आलोयणा निन्दना कर संलेखना संथारा कर समाधि मरण प्राप्त करना) यों दो भान्ति का मरण निरूपण करते हैं—ऐसे मुनिराजों के पवित्र चरणकमलों पर सेवक जनों के भौंरे की तरह दोनों नेत्र मण्डराते रहते हैं अर्थात् पादपद्मों में

बाल युवा वय वृद्ध विषे, उपसर्ग त्रिधा नहिं चित न लावें।
सम्यक् मिश्र मृषा लख के, तिरयञ्च मनुष्य सुरें समभावें।
शस्त्र न दण्ड न गर्व न धारत, त्रै पद बोधन हेतु सुनावें।
ते मुनि को तिहुं वार प्रदक्षिण, दे प्रणमों समता सुख आवें।८५।

उच्च गतिओं में जाते हैं—इस लोक और परलोक में समदृष्टि जिन के साथ दोनों भवों में रहती है। सविनय दोनों हाथ जोड़ कर ऐसे साधु महात्माओं के दोनों पाद पद्मों में मस्तक झुकाने से सदा आनन्द प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥

८५. बाल, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओं में मुनिमहात्मा देव मनुष्य और

ये जग जान तिहुं भुवने यश, तीन हि काल कि बात बतैया।
तीन सुगुप्त भगी तिहुं में, चित्त दर्शन ज्ञान चारित्र गुहैया।
त्रय गुण को जग गत लखि, त्रय लिङ्ग विकार मिटाय दिखैया।
ते मुनि वन्दत मोद लहो, त्रय मांधि विषें गुण ग्राम पढ़ैया॥८६॥

---

१ उत्पाद (उत्पन्न होने वाला) २ व्यय (नष्ट होने वाला) ३ ध्रुव (नित्य रहने वाला) इन पदत्रय (तीन पदों) का बोध प्राप्त कर हेतु दृष्टान्त द्वारा इन की व्याख्या करते हैं। उन साधु मुनिराजों की तीन वार प्रदक्षिणा युक्त वन्दना नमस्कार करने से समता भाव और सुख की प्राप्ति होती है॥ ८५॥

चार कषाय को छांडत हैं. गति चार कुं छांड पर चित लाई।
चार सुधर्म बखानत हैं. चतु ही शरणो सुख शान्ति बताई।
चार प्रकार के देव करें यश. वेद चहुं उपमा मुनि पाई।
ते प्रणमों चहुं भंग प्रकाशक. मंगल चार सदा सुखदाई।८७।

है और स्त्रि. पुरुष. नपुंसक इन तीन लिंग विकारों को नष्ट कर दिखाते हैं उन मुनियों के त्रिसन्धि (प्रातः. मध्यान्ह. सायं) में गुण गायन करने से और वन्दना करने से परम आनन्द प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥

८७. मुनिराज क्रोध. मान. माया. लोभ इन चार कषाय और नरक. तिर्यञ्च मनुष्य. देव इन चार गतियों को त्याग कर (छेदन कर) इन से पर

पृथ. पाया पाई जाती हैं । स्याद्वाद नय में प्रतिपादित तत्त्वों के प्रकाशक मुनिराजों को वन्दना नमस्कार करता हूं और संसार में ये चार मङ्गल (अरिहन्त. सिद्ध. साधु, धर्म) सदा सुखदायक हैं ॥ ८७ ॥

८८. औत्पातिकी. वैनयिकी. कार्मिकी. पारिणामिकी यों चार प्रकार की बुद्धि जिन के दिमाग में प्रकट होती है । जो ज्ञान. दर्शन. चारित्र, तप या दान. शील. तप. भावना इन चार कारणों को मोक्ष मार्ग प्ररूपण करते हैं । जो मोक्ष का साधन करने वाले श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी, इन चार तीर्थों का वर्णन करते हैं । तथा (धर्म. अर्थ, काम, मोक्ष,) संसार के इन चार पुरुषार्थों को जो जानते हैं । जो चार दुर्लभ परमाङ्गों मनुष्य जन्म. सद्शास्त्र श्रवण. सद् धर्म पर विश्वास, धर्मकार्य में प्राक्रम-प्रवृत होना) का कथन करते हैं । दान के इन (अभयदान. सुपात्र दान

हैं। ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति इन पांच समिति को जो धारण करते हैं। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्श इन पांच इन्द्रियों को जीतने [वश करने] के लिए जो बड़ा परिश्रम करते हैं। कामदेव के पांच बाण [वार्ता, स्पर्श, कटाक्ष, वक्षोज रजोगन्ध] जिन्हें क्षोभ नहीं सकते। जो पांच महाव्रतों का शुद्ध रीति से पूर्णतया पालन करते हैं। सम्यक्त्व के पांच भूषण और *पांच ज्ञान के जो धारक हैं तथा पांचवीं गति मोक्ष में ही जिन का ध्यान है

नोट —समकित के पांच भूषण, १ जिनशासन में निपुणता २ जिनशासन की प्रभावना (प्रचार) ३ तीर्थों की सेवा, ४ शिथिल पुरुषों को धर्म में स्थिर करना, ५. अरिहन्त, साधु या गुणवान पुरुषों का आदर सत्कार तथा सेवा भक्ति करना है।

* पांच ज्ञान :—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल इन का विशेष व्याख्या नंदी सूत्र से देखें

[illegible] अविरति, प्रमाद, कषाय, योग यों [illegible] के पांच भेदों का वर्णन करते हैं। और सामायिक, छेदोपस्थापनिक, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात चारित्र के इन पांच भेदों का वर्णन करते हैं। सूक्ष्म और बादर पांच स्थावर जीवों (पृथ्वी, अप, तेज-वायु, वनस्पति काय) के भेदों के ज्ञाता होते हैं। तथा संसार में पांच तरह के जीव (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय रूप पांच जाति के जीव) प्रतिपादन करते हैं। पांच अनुत्तर विमानों के देवों का पुण्य अनुपम होता है वहां वे देव सर्व श्रेष्ठ सुखों का उपभोग करते हैं। सो ये सब बातें मुनिराज ज्ञान बल से जानते हैं। सेवक जन उन्हें वन्दना करते हैं और सदा उन के गुण गान करते हैं ॥ ९० ॥

—:०:—

आर्तध्यान, धर्मध्यान) विधि सहित शुद्ध रीति से करते हैं। और मोक्ष प्राप्ति के लिए धारण करते हैं। इनका छः भाग और ३६ रागनियों सहित ऐसे मुनि महात्माओं का यश गायन करते हैं ॥ ६१ ॥

६२. अवसर्पिणी काल के ६ आरे (विभाग यथा सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा, दुषमा दुषमा ये ६ होते हैं) और उत्सर्पिणी काल के ६ आरे उन से विपरीत दुषमा दुषमा से शुरू हो सुषमा सुषमा तक होते हैं ऐसे कालचक्र के भेद लक्षणों सहित मुनि महात्मा कथन करते हैं। षट लेश्या (जिस से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल) के स्वरूप का उन के रंग, भाव और लक्षणों सहित दिग्दर्शन कराते हैं। गुणावन्त साधु षट ग्रन्थों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) के

[illegible]. पच्चक्खाण) विधि सहित शुद्ध भाव से करते हैं। और मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन करते हैं। केवलज्ञान [illegible] गत और ३६ [illegible] सहित ऐसे मुनि महात्माओं का यश गायन करते हैं ॥ ६१ ॥

६२. अवसर्पिणी काल के ६ आरे (विभाग यथा सुषमा सुषमा. सुषमा. सुषमा दुषमा. दुषमा सुषमा. दुषमा. दुषमा दुषमा ये ६ होते हैं) और उत्सर्पिणी काल के ६ आरे उन से विपरीत दुषमा दुषमा से शुरु हो सुषमा सुषमा तक होते हैं ऐसे कालचक्र के भेद लक्षणों सहित मुनि महात्मा कथन करते हैं। षट लेश्या (जिस से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो कृष्ण. नील. कापोत. तेजो. पद्म. शुक्ल) के स्वरूप का उन के रंग. भाव और लक्षणों सहित दिग्दर्शन कराते हैं। गुणवन्त साधु षट ग्रन्थों (न्याय. वैशेषिक. सांख्य. योग. मीमांसा. वेदान्त) के

सुषम सुषम ते षट भांति के, दुषम दुषम ते षट आरे।
काल के भेद कहें युत लक्षण, लेश छहू रंग रीत विथारे।
जानत हैं षट ग्रंथन को मत, वेद षडङ्ग लखें गुण धारे।
ते मुनि के पग शीश धरे, षट खण्ड पती गुण ग्राम उचारे।६२।

अभ्यन्तर तप के ६ भेद हैं) और ६ प्रकार का बाह्य तप (शरीर से सम्बन्ध रखने वाला तप-अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिसंलीनता ये बाह्य तप के ६ भेद हैं) कर्मों की निर्जरा के लिये करते हैं। छः ऋतुओं (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर) में षट आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, बन्दना, प्रतिक्रमण,

दान क्रियादि निषेध किये. नर कानलि मान को नाम मुनाया ।
मान नयां लग निश्चल आतम. मान भयानक तें न डुगाया ।
ते मुनि को यश देव रतीश्वर. सप्त स्वर्ग रच मङ्गल गाया ।
मान अणी युत देव पती. तिन के पग ऊपर शीश निवाया । ९३ ।

रहस्य और वेदों के षडांग (शिक्षा. कल्प. व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ये वेदों के ६ अंग हैं) के ज्ञाता होते हैं। उन साधुओं के चरणकमलों पर छः खण्ड के स्वामी चक्रवर्ती राजे मस्तक झुकाते हैं और गुण गान करते हैं ॥ ९२ ॥

९३. जुआ. मांसाहार. मदिरापान. वेश्यागमन. शिकार. चोरी. परस्त्री गमन इन

सात व्यसनों का निषेध कर घम्मा, वंसा, सीला, अञ्जना, रिट्ठा, मघा, माघवइ इन सात नरकों की वेदना और दुःख का भय दर्शाते हैं। सात १नयों (नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवं भूत) से वस्तुओं के स्वरूप को देखते हैं और सात भय स्थान (इह लोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, वेदना भय, मरण भय, अश्लोक भय) से त्रस्त (भय भीत) नहीं होते। ऐसे मुनिराजों का यश इन्द्र के गुरु रतीश्वर देव सात २स्वरों से गायन करते हैं और सात

नोट :- १. अनुयोगद्वार सूत्र मे इन का सविस्तर वर्णन है।

२ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धवैत या रेवत, निषाद ये सात स्वर होते हैं- अनुयोगद्वार और ठानाङ्ग सूत्र मे इन का वर्णन है।

सातहि राज प्रमाण अधो जग. सात मध्य तिन को ऋषि बोलें ।
ऊरध लोक सु सातहि राज को. ते विरला मुनिराज फरोलें ।
पोडक सातहि वार अराधक. संयम सों शिव होइ अडोलें ।
सातहि वार सदा प्रणमों ऋषि. जो ममभाय मिटावन मोलें ॥९४॥

अणिका (पादातानीक, पीठानीक. कुंजरानीक. महिषानीक. रथानीक. नाट्यानीक. गन्धर्वानीक, यों सात प्रकार की सेना) सहित देवपति इन्द्र भी आकर उन के चरणकमलों में सिर झुकाते हैं ॥ ९३ ॥

आठ रुचें गुण सिद्धन के वसु, आगम मात गही सुख पाया ।
अष्ट विभक्ति सिद्धान्त उचारत, अष्ट दिशा जन सेवन आया ।
सम्पद आठ करी गुरु राजत, आठहि याम गुणी गुण गाया ।६५।

---

६४. अधोलोक (नीचे के लोक विभाग) की ऊंचाई सात राजू प्रमाण है। जिस में सात नरकें स्थित हैं। ऊर्ध्व लोक भी सात राजू प्रमाण ऊंचा है। इन का विस्तृत विवेचन मुनिराज सुनाते हैं। आराधक संयमी उत्कृष्ट सात भव करके फिर निश्चय मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। उन साधु महात्माओं को सातों वार (रविवार से शनिवार तक) नित्य नमस्कार

अष्ट महागुण धार तजे गण, आठ निमित्त पछान न भाखे।
अष्ट महापरदेश विषें थिर, सम्यग अष्ट गुणी गुण नाखे।
इन्द्र वराङ्गन अष्ट मिली, तिन के यश गीत करे रस चाखे।
अष्ट सुसिद्धि लहे नर सो, मुनिराज को जो उर अन्तर राखे।९८।

अमूर्ती, अगुरु लघु, अनन्त वीर्य) बसे रहते हैं, और अष्ट प्रवचन दया माता (पांच समिति,तीन गुप्ति) की शरण प्राप्त कर आनन्द प्राप्त करते हैं जो(व्याकरण अनुसार)आठों विभक्तियों से सिद्धान्त उच्चारण करते हैं। जिन की सेवा के लिए (दर्शनार्थ) आठों ही दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उतर, दक्षिण, ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायु) से लोक आते हैं और जो मुनिराज आचार्य

की आठ सम्पदा (आचार, शरीर, सूत्र, वचन, वाचना, मति, संग्रह, उपयोग) युक्त होते हैं ऐसे महात्माओं के गुणों जन आठों पहर गुण गान करते हैं ॥ ८५ ॥

८६. आठ १महागुणों के धारक मुनि राज गण (साधु सम्प्रदाय या गच्छ) से छोड़कर अकेले विचर सकते हैं। २आठ निमित्त शास्त्रों को जानते हुए भी प्रकट नहीं करते। सम्यक्त्व जिन के आठ रुचक महाप्रदेशों

नौ पद तारक मन्त्र पढ़े, नव वाड़ करे नव सम्यक जाने।
नौ विध भक्ति करैं नव पुण्य, कि भेद कहे नव तत्व वखाने।
नौ रस की जग रीत लखी, मुनि टालत दोष नवें जु नियाने।
नौ ग्रह सेवत ते मुनि को, अरु नौ विधि नाथ नवें गुरु माने ।९७।

में समाई हुई है। तथा समकित के आठ गुणों (अंगों-निशंकित, निकांक्षित, निर्विचिकित्सक, अमूढ दृष्टि, उपगूहन, स्थिरीकरण, वात्सल्य, प्रभावना) के जो धारण करने वाले हैं। देवपति इन्द्र की आठों अग्र-महेषी देवियां आकर उन की कीर्ति गान कर प्रसन्न होती हैं। जो पुरुष ऐसे मुनिराजों का हृदय में भक्ति पूर्वक ध्यान करते हैं वे आठ

पालन करते हैं। समकित के नव भेदों (द्रव्य, भाव, निश्चय, व्यवहार, निसर्ग, उपदेश, कारक, रोचक, दीपक) को जानते हैं। नव प्रकार की

(पिछले सफे के नोट न० २ की बाकी)

३. इन्द्रिय निरीक्षण, स्त्री के अग उपाग न देखना यदि अकस्मात् नजर पड जाए तो फौरन दृष्टि हटा ले और उन पर ध्यान न दे।

४. कुड्यान्तर–यदि मकान में पडदे, कनात, टट्टी आदि से विभाग किया हो अथवा ऐसी भीति (दीवार) हो जिस से स्त्री पुरुषों के काम क्रीडा हास्य आदि के शब्द सुनाई दे सके वहा निवास नही करना।

५. पूर्व क्रीडा स्मरण–गृहस्थावास में किए हुए काम सम्भोगादि का स्मरण न करना।

६ गुप्ति–औरों से दृष्टि बचाकर बार २ ताकना या आंखों से सकेत करना इस का न करना छट्ठी बाड है।

७. प्रणीत–अति स्निग्ध पौष्टिक पदार्थों का नित्य सेवन न करना।

८ अतिमात्राहार–रूखा आहार भी अधिक मात्रा में न खाना।

९ विभूषा–शरीर की सजावट न करना, बनाव शृङ्गार न करना, ये ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए नव बाडें हैं।

आदि (चार त्रस—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, और पांच स्थावर—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति के जीवों की रक्षा रूप भक्ति) करते हैं। पुण्य के नव भेदों (अन्न पुण्य, पान पुण्य, लयन पुण्य, शयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य, काय पुण्य, नमस्कार पुण्य) का कथन करते हैं। ३नव तत्त्व पदार्थों का स्वरूप चिंतन करते

नोट :— १जीव—जो चेतना युक्त हो उपयोग लक्षण वाला हो द्रव्य और भाव प्राणों वाला हो।

२अजीव—जो चेतना रहित सुख दुःख का अनुभव न करे जड़ लक्षण और जड़ स्वरूप हो।

३पुण्य—जो जीव को पवित्र करे—ऊंचा उठावे।

४पाप—जो आत्मा को मलिन कर मन वचन काया की अशुभ प्रवृत्ति से बन्धे जीव को नीच गति में ले जाए।

५आस्रव—जिस के द्वारा आत्मा में कर्म लिप्त हों।

६संवर—जो आत्मा को नवीन कर्मों के बन्ध का निरोध करे।

हैं। सांसारिक नव रसों (शृङ्गार, वीर, करुण, अद्‌भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र, शान्त) के लक्षण आदि जानते हैं। जो नव ४निदान दोषों (नियाने के ९ भेदों) का त्याग करते हैं। नव ग्रह ज्योतिषी देव (सूर्य, चन्द्र; मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु) उन मुनिराजों की सेवा करते हैं जो क्रोध, मान, माया, लोभ, शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श इन नव को वश करते हैं वे गुरु हैं ॥ ९७ ॥

(पिछले सफे के नोट की बाकी)

७निर्जरा–जिस से आत्मा से कर्म नष्ट हों।

८बन्ध–जिस से आत्मप्रदेश कर्म पुद्‌गल से एक साथ मिलें।

९मोक्ष–आत्मप्रदेशों का कर्म पुद्‌गलों से विमुक्त होना, ये नव तत्व पदार्थ हैं इन का स्वरूप उत्तराध्ययन, ठानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती, पन्नवना तथा अन्य ग्रन्थो मे सविस्तर वर्णित है।

अवसर्पिणि में उत्सर्पिणि में, नव अन्तर मों हरिके रिपु होवें।
ताहि हनें हरि देव महा यश, राज्य अभीत करें सुख सोवें।
ता नव के नव भ्रात महा बल, संयम सों गति ऊरध होवें।
ते मुनि को उरगादि नवें गण, देव भलो गुण माल पिरोवें ॥६८॥

---

६८. अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में नव२ प्रतिवासुदेव होते हैं—उन को मारने वाले बड़े यशस्वी नव वासुदेव भी निर्भय राज्य करते हुए सुख-पूर्वक सोया करते हैं। इन नव२ वासुदेवों के महाबली भाई नव बलदेव होते हैं जो संयम (साधुवृत्ति) धारण कर उच्च गति देव या मोक्ष को प्राप्त करते हैं। उन मुनियों को नागकुमार आदि नवगण के देवता

त्याग परिग्रह को दशधा दश, धर्म्म धरे दश नेम वखानी।
मानव आयु दशा दश जान, कहैं उपदेश सुनें दश प्राणी।
ज्ञान दशों दिशि फैलि रह्यो, वर शील समाधि दशों विधि ठानी।
ज्योतिक भौन पती तिरजम्मक, सेवत पूजत इन्द्र विमानी।९९।

श्रेष्ठ गुणों की माला पिरोते हैं अर्थात स्तुति करते हैं ॥ ९८ ॥

९९. साधु दश प्रकार के परिग्रह (क्षेत्र, वास्तुक, धन, धान्य, द्विपद चतुष्पद कुविधातु, चान्दी, सोना, शरीर की मूर्छा भावआसक्ति) का त्याग करते हैं। दशविध धर्म (क्षमा, निर्लोभता सरलता, लाघवता, अममत्वभाव,

पाप उदै नरकै दशधा दुख. जीव महै नहिं आश्रय कांको ।
पुण्य उदै प्रगटै दशधा सुख. कल्प तरूवर को जुगलां को ।
मानि दशाङ्ग भली करणी. शिव पावन वा पद उच्च सुरां को ।
फेर दशांङ्ग भयो नर को भव. आदिक सिद्ध कह्यो यश तांको।१००।

प्रत्याख्यानों का विवेचन करते हैं । मनुष्य की आयु की दश दशाओं (अालतो) के ज्ञाता होते हैं । दश प्राणों (श्रुतेन्द्रिय बल. चक्षुरिन्द्रिय बल. घ्राणेन्द्रिय बल. रसेन्द्रिय बल. स्पर्शेन्द्रिय बल. मनःबल. वचन बल काय बल. श्वासोश्वास बल. आयुष्य बल) के धारक जीवों को उपदेश सुनाते हैं । जिन का ज्ञान दशों दिशाओं (पूर्व. पश्चिम. उत्तर. दक्षिण.

ईशान, अग्नि, नैऋत्य, वायु, ऊर्ध्व, अधः) में फैल रहा है और जो श्रेष्ठ शील व्रत की दश समाधि युक्त होते हैं—ज्योतिषी, भुवनपति, त्रिजृम्भक आदि देव और उन के इन्द्र ऐसे साधुओं की सेवा और पूजा-वन्दना नमस्कार स्तुति करते हैं ॥ ६६ ॥

१००. पाप के प्रभाव से जीव नरक गति में उत्पन्न होकर दश प्रकार के दुःख-वेदना (अनन्त क्षुधा, अनन्त तृषा, अनन्त शीत, अनन्त ताप, अनन्त महाज्वर, अनन्त खुजली-खाज, अनन्त रोग, अनन्त अनाश्रय, अनन्त शोक, अनन्त भय) सहता है वहां उसे किसी का सहारा नहीं होता। पुन्य के प्रत्यक्ष होने पर दशविध कल्प वृक्षों (मतङ्ग, भिङ्गा, तुटियङ्गा, जोति, दीप, चितङ्गा, चितरसा, मनोवेगा गिहंगारा, अनियगा) का सुख युगलियों को मिलता है। दश अंगों वाली उत्तम करणी करके

आगम अंग एकादश मानहिं. श्रावक की प्रतिमा प्रगटाई।
ऊंच विमान इकादश ही गत. योजन आयु नहीं जिन पाई।
संयमी साधु अनूप अनुत्तर. ते मुनि की महिमा गुरु गाई।
छन्द पदाक्षर जोड़ एकादश. भक्ति करी चित आनन्द ताई॥१०१॥

परम पवित्र ऊंचे मोक्ष पद या देव पद को पाते हैं। देवगति में आकर फिर दुर्लभ दशाङ्ग वाले (१मनुष्य जन्म. २आर्य क्षेत्र. ३उत्तम कुल. ४दीर्घायु-५पञ्चेन्द्रिय पूर्ण. ६निरोगी काया. ७साधु संगति. ८सूत्र श्रवण. ९श्रद्धा. १०धर्म प्रवृत्ति) मनुष्य जन्म को पाकर अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं उन्हीं का यश कथन किया गया है॥ १०० ॥

द्वादश भांति मुनि प्रतिमा धर, द्वादश अङ्ग प्रतीत ठराई।
द्वादश कल्प लगे जिस को बल, सो मकरध्वज मार चलाई।
द्वादश वृत्त सुसेवक को कहि, निर्जर द्वादश भांति बताई।
द्वादश मास विषें शरणा हम, धारत हैं तिन को सुखदाई।१०२।

१०१. ग्यारह अंग मयी जिन वाणी (आचारांग, सूयगडांग, ठानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती, ज्ञाता धर्म कथा, उपासकदशा, अन्तगड, अनुत्तरोववाई, प्रश्न व्याकरण, विपाक ये सूत्र इकादश अंग हैं) की व्याख्या मुनिराज करते हैं। श्रावक की १ग्यारह प्रतिमा की महिमा वर्णन करते हैं। साधु

नोट:-१दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, पौषध प्रतिमा, नियम प्रतिमा, ब्रह्मचर्य
(बाकी नोट १४४ सफे के नीचे देखें)

का प्रभाव होता है ऐसे कामदेव को जिन्हों ने दूर भगा दिया है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं । सेवा करने वाले श्रमणोपासकों को श्रावक के बारह १२व्रतों का बोध कराते हैं तथा निर्जरा (जिस से आत्मा से पूर्व बन्धे हुए कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध छूटे) के बारह भेद (६ बाह्य तप, ६ अभ्यन्तर तप) प्ररूपणा करते हैं । उन सुखदाता साधुओं का हम बारहों मास ही शरण (आश्रय) ग्रहण करते हैं ॥ १०२ ॥

(पिछले सफे के नोट न० १ की बाकी)

भि० प०, पचमासिया भि० प०, छमासिया भि० प०, सत-मासिया भि० प०, पढमा-सत्तराइदिया भि० प०, दोच्चासत्त राइदिया भि० प०, तच्चा सत्तराइदिया भि० प०, अहो राइआ भि० प०, एग राइआ भिक्खू पडिमा ये साधु की १२ प्रतिमा के नाम हैं विशेष वर्णन समवायाग सूत्र मे देखें ।

नोट २.–२श्रावक के वारह व्रत ये है–स्थूल प्राणातिपात विरमण, स्थूल मृषावाद विरमण, स्थूल

रत्न प्रभा तिन तेरह पत्थड़, जीव महँ दुःख पाप कमाई।
ये दश भूमि भई सुर कल्प, लगे तिय लिङ्ग उत्पन्न बताई।
ये दश में नर द्वीप लगे मुनि, चारण की गति शक्ति सुनाई।
लब्धिभई नहिं फोड़त जे ऋषि, ते दिव्य सोन्नलहैं सुखदाई।१०३।

---

१०३. रत्न प्रभा पहली नरक में तेरह प्रस्तर (मंज़लें) हैं वहां पापी जीव दुःख झेलते हैं। पहले सौधर्म देवलोक, और दूसरे ईशान देवलोक में

(पिछले पृष्ठ के नोट की बाकी

अदत्तादान विरमण स्वदार सन्तोष इच्छा परिमाण दिशि व्रत उपभोग परिभोग परिमाणव्रत अनर्थदण्ड विरमण सामायिक देशावकाशिक, पौषध अतिथि संविभाग-इन का विस्तार उपासक दशांग ठाणांग आवश्यक आदि ग्रन्थों से देखें।

चौदश जीव अजीव के भेद सों, चौदश राजू का लोक कहा है।
चौद भेद सम्मूर्छिम मानव, रत्तण को मुनि योग गहा है।
जीव कहै गुण थानक चौदश, चौदश पूरब धार महा है।
चौदश दोष बिना श्रुति भाषण, रत्न पती नामि मोद लहा है।१०४।

(एकादि चौदह पर्यन्त शिक्षा सम्पूर्ण)

तेरह प्रस्तर होते हैं वहीं तक (पहिले दूसरे स्वर्ग में) स्त्री लिंग (देवियों) की उत्पति होती है। तेरहवें उत्तम रुचक द्वीप तक जाने की जंघाचारण साधु (जांघों से आकाश में उड कर जाने वाले लब्धिसम्पन्न साधु) की शक्ति होती है। और ऐसी लब्धियों (विभूति-योग शक्ति) के

तीरथ नाथ समानिक केवल, देव गणाधिप सूरि अचारज।
पूरब धार बहु श्रुति पण्डित, वाद जयी अणगार सु आरज।
वैक्रिय धार अहारक संयुत, चारण संयुत भाड महा रज।
कोष्टक बुद्धि अक्षीण मयी प्रणमों, सब साधु सधें सबकारज।१०५।

टाल कर आगमशास्त्रों (जिनवाणी) का पठन पाठन करते हैं। चौदह रत्न५ के स्वामी चक्रवर्ती राजे उन को बन्दना नमस्कार करके आनन्द प्राप्त करते हैं ॥ १०४ ॥

५चक्र, छत्र, दण्ड, चर्म, खड्ग, कांकिणी, मणि, पुरोहित, अश्व, गज, सेनापति, गृहपति, वार्तिक, स्त्री ये १४ रत्न चक्रवर्ती-सम्राट के होते हैं।

केतक सम्पति त्याग ग्रही व्रत, कै गढ राज विभूति के त्यागी।
कैनर दीन अधीन अनाथ सुनें, जिन वैन ग्रही व्रत रागी।
केतक साधु जघन्य गुणों थिर, केई उत्कृष्ट पदे बड भागी।
मध्य गुणे मुनिराज सबै हम, बंदत हैं चरणाम्बुज लागी।१०६।

---

१०६. जिन बानी के उपदेशामृत को पान कर कितने एक मनुष्य तो सांसारिक ऐश्वर्य पर लात मार कर और कई एक राज्य ऋद्धि का

(पिछले सफे के नोट की बाकी)

कोष्टक लब्धि–जितना ज्ञान सीखा जाए आयु पर्यन्त कुछ भी न भूलने की शक्ति विशेष।

अक्षीण–अपने लाए हुए आहार से चाहे कितने भी साधु तृप्त कराने की शक्ति विशेष, कमी का न होना।

निरख भाइयों और चण्डाल, सुसाधु के संग दया रस भीने ।
बाल पनें तरुणा पन में पुनि, वृद्ध भये व्रत संयम लीने ।
नीच क्रिया पद नीच करें, तिम उत्तम तें पद उत्तम कीने ।
जाति को काम नहीं जिन मारग, संयम को प्रभु आदर दीने ।१०७।

परित्याग कर साधु बनते हैं । तथा कई निर्धन और असहाय मनुष्य भी जिन वाणी का अवलम्बन कर संयम ग्रहण करते हैं । कितने मुनि तो जघन्य (थोड़े) गुणों में स्थिर, कितने मध्यम गुणों से सम्पन्न होते हैं और कितने ही महा भाग्यवान उच्च पद को पहुंचे होते हैं ऐसे सब मुनिराजों के पादपद्मों में मस्तक झुका कर हम वन्दना नमस्कार करते

हैं ॥ १०६ ॥

१०७. हिंसा करने वाले, मार धाड करने वाले चोर डाकू और चण्डाल तक भी (अर्थात् पापी और नीच भी) अच्छे साधु महात्मा की संगत होने पर (उपदेशामृत पान कर) दया रूप रस से भीग कर नम्र हो जाते हैं। कई बालावस्था में, कई युवावस्था में और कई बुढापे में संयम (मुनि धर्म) ग्रहण करते हैं। जैसे नीच कर्म (हिंसा आदि) से नीच दशा प्राप्त होती है वैसे ही श्रेष्ट क्रिया (सद्कर्म अहिंसा, सत्य आदि) के आचरण से पापी और नीच मनुष्य भी उच्च पद्वी को प्राप्त कर

नोट :–श्री उतराध्ययन सूत्र के बारहवें और पच्चीसवें अध्ययन मे स्पष्ट विवेचन है कि आत्म विकास मे जाति को विशेपता नही है, चाडाल भी आत्म कल्याण के मार्ग का आराधन कर सकता है–पाठक उक्त सूत्र के दोनो अध्यायो का स्वाध्याय कर।

एक भये तन सुन्दर सूरत, रूप अनंग को जीतन हारे।
एक कुरूप भये कुब्जादिक, पूरब कर्म्म उदय फल न्यारे।
बाहिर रूप से काम नहीं कछु, अंतर आतम रूप विचारे।
ज्ञान दया सत शील सु सुन्दर, साधु सदा गुरुदेव हमारे ।१०८।

सकते हैं। जैन धर्म (जिनशासन) में जाति पांति के पक्षपात (लिहाज) का कोई स्थान नहीं है। यहां तो श्री वीतराग भगवान ने संयम (सुकर्म) को ही प्रतिष्ठा प्रदान की है ॥ १०७ ॥

१०८. कई एक मुनिराजों के शरीर की ऐसी सुन्दर और मनोहर आकृति तथा प्रभा होती है जिन के सम्मुख कामदेव का रूप भी लज्जित होकर

देख के एक पदारथ लक्षण, चित विराग चढ़े मुनि होवें।
एक सुनें ऊपदेश गहैं ब्रत, संयम साबुन सों मल धोवें।
नाथ को साथ संभाल लहैं, इक मीत के संग सुप्रीत को ढोवें।
धारि महा तपसा सुर धेनु को, ज्ञान सुक्षीर सुधारस चोवें।१०६।

फीका पड जाता है। इस के विपरीत कई एक ऐसे मुनि भी होते हैं जो पूर्व कर्मों के प्रभाव से कुबडे आदि तथा कुरूप होते हैं। परन्तु यहां तो बाहर की बनावट से कोई प्रयोजन नहीं है, यहां तो हृदय में अन्तवर्ती आत्मा के रूप के विचार की आवश्यकता है। ज्ञान, दया, सत्य, शील आदि सद्‌गुण यही वास्तविक सुन्दरता है ऐसे सुन्दर गुण

केतक संयम धरत त्रिया तन, केतक हैं पुरुषा शिव जाहीं ।
केतक कृत्य नपुंसक सूरत, संयम लै चित की सत लाहीं ।
मानत मो पुरुषारथ एक हि, द्रव्य लिङ्ग त्रिया अब ठाहीं ।
ते सब संयम धारक को कर, जोड सदा प्रणमों गुण चाहीं । ११० ।

स्वरूपज्ञ महात्मा हमारे गुरुदेव हैं ॥ १०८ ॥

१०९. कई मनुष्य किसी पदार्थ के लक्षण और उस के परिवर्तन को देख कर मन से वैराग्य उत्पन्न होने पर मुनिव्रती हो जाते हैं । कई एक उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण करके संयम रूप साबुन से पाप रूप मैल

नोट :—रत्नाकर की प्रति में 'सकल धारक को कर जोड सदा प्रणमों गुण गाहीं' ऐसा पाठ है

को धो डालते हैं। कई तो अपने स्वामी के साथ और कितने अपने मित्र के साथ प्रीति को निभाते हुए साधु बन जाते हैं। संयम धारी साधु महात्मा तपस्या रूप कामधेनु से ज्ञान रूप दुग्धामृत दोहते हैं।१०६।

११०. कितनी ही स्त्रीएं संयमवन्त (साध्वी-आर्यिकाएं) हैं—तथा कितनेक पुरुष दीक्षा ले कल्याणकारी मोक्ष मार्ग पर चलने वाले बनते हैं और कई एक कृत नपुंसक भी संयम को ग्रहण कर चित में से पाप रूप मलिनता निकाल देते हैं। जिन को केवल आत्म दर्शन (मोक्ष) पुरुषार्थ की ही लगन रहती है वे उपर्युक्त तीन द्रव्य चिन्हों (स्त्री लिंग, पुरुष लिंग, नपुंसक लिंग) से होने वाले पापों को गिरा कर मसल (पीस) देते हैं उन सब पूर्वोक्त संयमी महात्माओं को दोनों हाथ जोड कर गुण की चाह करता हुआ नमस्कार करता हूं॥ ११० ॥

चारों वेद सुनाङ्ग उपाङ्ग. के धारक जो इतिहास सुनावें।
वैद्यक तें निरघण्टु ति लौं कर. साठहि तन्त्र षडाङ्ग पढ़ावें।
ज्योतिष छन्द निरुक्त यतें. शब्दागम कोश सुनाय दिपावें।
विप्र यती परिव्राजक पण्डित. ते सब जीत मुनीश्वर आवें ।१११।

---

१११. अङ्गों वा उपाङ्गों के सहित चार वेदों के ज्ञाता. इतिहास (जगत् का चरित्र) सुनाने में प्रवीण वैद्यक से निघण्टु तक और साठ तन्त्र शास्त्र छहों अंगों सहित पढ़ाने वाले. गणित ज्योतिष. छन्द-काव्य. निरुक्त (मन्तव्य निर्णायक शास्त्र). शब्द शास्त्र (व्याकरण) तथा कोश को पक्की तरह सुझा कर सुनाने तथा फैलाने वाले जो विद्वान ब्राह्मण. सन्यासी

दानव देव समीप वहैं, गरुड़ामर, नाग पती हित पावें।
मानव वैर पुरातन छांडि के, बैन सुनें मिलके यश गावें।
चाहे कपोत चिड़ी सुमिचान, मिले गज.एन समें हरि आवें।
शान्त महामुनि शान्त कियो, सब ज्योतिन के ढिग आवत भावें।

और पण्डित जन हैं, इन सब को मुनि महात्मा जीत लेते हैं ॥१११॥

११२. मुनिमहाराज के चरणकमलों में भुवनपति, विमानिक, सुवर्णकुमार, नागकुमार आदि देव गण प्रीतिपूर्वक पास २ बैठते हैं। मनुष्य भी अपने सभी पुराने वैर भाव को छोड़ कर बाणी को सुन प्रस्पर मिलकर उन के यश को गाते हैं। चाहे कबुतर, चिडियां से लेकर बाज पक्षी

पावक राशि हुवे कमला कर, नाग प्रसून कि माल जु होई ।
सिंह गजादि बली शशि का सम, शिष्य समान नमें रिपु सोई ।
व्यन्तर क्रूर हुवे जिम किंकर, भूपति क्रूर सखा सम जोई ।
वांछित काज करें सबही, मुनिराज कि सेव करे जब कोई ॥११३॥

एकत्र हो जाएं । तथा हाथी से ले कर शेर तक इकट्ठे हो जाएं । शान्तस्वरूप महा तेजस्वी मुनि का तेज उन को ऐसा शान्त बना देता है कि विरोधी जीव परस्पर वैर सम्बन्ध को भूल कर मुनिराज के समीप आते ही एक दूसरे को चाहने लगते हैं ॥ ११२ ॥

११३. जिन के सन्मुख अग्नि का पुञ्ज (राशि-ढेर) कमलों वाले सर (तालाब)

दारिद पन्नग दूर भये, गरुड़ोत्तम साधु हृदै महँ आये।
सङ्कट बन्धन टूट गये, तप वन्त महा मुनि के गुण गाये।
सम्पद उत्तम पाय लही, यश वन्त भये सनमान बढ़ाये।
कारज सिद्ध भये सब ही, मुनिराज के पांव सु शीश छुहाये।११४।

के समान वा विषैला (जहरीला) सांप फूलों की माला की भान्ति हो जाता है। बलवान् शेर और हाथी शशक (खरगोश) की तरह तथा वैरी मनुष्य शिष्य के समान नम्र हो जाते हैं। भयङ्कर ब्यन्तर देव (भूत यक्षादि) नौकर की तरह और निर्दय राजा मित्र की तरह व्यवहार करने लग जाते हैं जो कोई इस प्रकार के मुनिराजों की सेवा भक्ति

चन्द्र कि चाह चकोर चहै, दिन नाथ को कोक उदीक रहै है।
धेनु लिपै बछरा हित धारत, बालक मात को मेल चहै है।
मालति सों लपटाय रहे अलि, चातक मेघ सों प्रीत लहै है।
साधु महा मुनि के पग को, हित सेवक चित्त अपार गहै है।११४।

रखते हैं उन के मन इच्छित सभी कार्य्य सम्पूर्ण हो जाते हैं॥११३॥

११४. गरुड़ के सदृश साधुओं का हृदय में ध्यान करने से दरिद्र रूपी सांप भाग जाते हैं, और तपस्वी महामुनियों के गुण गाने से कर्मों के बन्धन चकनाचूर हो जाते हैं। सन्मान के बढ़ने से यशवान होने पर हर एक सुन्दर ऐश्वर्य वाली वस्तु की प्राप्ति होने लगती है, ऐसे मुनि राजों के

कौन गिनैं घन बूँदन को, वन पत्र पयोधि तरंग बतावे।
कौन मिनैं कर अङ्गुलि सों उरवी, गिरि मेरु को तोल दिखावे।
कौन तरे भुज सों रतनाकर, अम्बर में उड़ अन्त सुनावे।
श्री गुण सागर साधु अगाध, कहां कवि अपनी बुद्धि लगावे।११६।

चरणों पर शिर को टिकाने से सर्व कार्य सिद्धि होती है ॥ ११४ ॥

११५. जैसे चकोर चन्द्रमा की चाह करते हैं और चकवे सूर्य्य के उदय होने की प्रतीक्षा (चाह) करते हैं, गौ की बछड़े चाह करते हैं, बालक मां से मिलना चाहते हैं। भ्रमरें जैसे मालती के पुष्पों के साथ लिपटे रहते हैं, और पपीहे बादलों से प्रसन्न होते हैं, ऐसे ही महामुनियों के चरणों को बन्दना

श्री अरिहन्त जिनेश्वर के, गुण द्वादश अष्ट सुसिद्ध प्रभु के।
सूरि गणाधिप के षट तीस, मिले पचवीस सुपाठक जु के।
सात सुवीस रले अणगार, कियांशत अष्ट मिले शशि द्रके।
मलकि माल रसाल रची, गुण ग्राहि प्रसाद महंत गुरु के।११७।

करने की सेवकों के चित्त में सदा अत्यन्त अभिलाषा बनी रहती है ॥११५॥

११६. बरसते बादलों के जल की बूंदों, वन के पत्तों और समुद्र की लहरों को गिन कर कौन बता सकता है, कौन हाथों की अङ्गुलिओं से धरती और मेरु पर्वत को नाप वा तोल कर दिखा सकता है। कौन मनुष्य है जो समुद्र को भुजा से तैर कर और आकाश में उड़ कर इन दो

ज्ञान छिपावन हार हन्यो, जिन दर्शन रोकनहार विनासी ।
मोह मिटाय तथा अंतराय, हने चतु घातिक कर्म्म जु त्रासी ।
केवल दर्शन ज्ञान सदा थिर, लोक अलोक पदारथ भासी ।
शक्ति सभी जिस माहिं महापद, पूरणब्रह्मस्वच्छन्द विलासी ११८

का अन्त (पता) लगा कर कह सुनाये, इसी प्रकार गहरे समुद्र के समान गुणों वाले साधुओं के गुणों को कौन कवि अपनी बुद्धि से वर्णन कर सकता है ॥ ११६ ॥

११७. श्री अरिहन्त जिनेश्वर भगवान् के बारह गुण, श्री सिद्ध भगवान् के आठ गुण, श्री आचार्य महाराज के छतीस गुण, उपाध्याय महाराज के

ओढक देह उदारक की, जिह केश न रोम नहीं नख वाढे।
अंत नहीं बल प्राक्रम को, मुख को गुण को करुणा रस गाढे।
दोष नहीं जिह मोक्ष भयो, ढिग जीवन अर्थ महा रस चाढे।
ते प्रणमों अरिहंत प्रभू भव, सिन्धु पडे जन केतक काढे।११६।

---

११६. अन्तिम उदारक शरीर धारण करने वाले, जिन के शिर के बाल, त्वचा (खाल) परके रोम और नख नहीं बढते, जिन के बल, उद्यम, सुख तथा गुणों का पारावार (थाह) नहीं और जो अति दयालु होते हैं राग, द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, अज्ञान, रति, अरति, शोक, हास्य, घृणा, मिथ्यात्व, निन्दा, विकथा, आलस्य, निद्रा इन १८ दूषणों

सर्व सर्व प्रभु सर्व लखि जिन, सर्व शिरोमणि सर्व सुज्ञाणी ।
आतम राम अनाश्रव उत्तम, ओढक साधु अगाध प्रताणी ।
निश्चल चित्त निर्ग्रंथ निरामय, नाकपति प्रणमें स्तुति थाणी ।
कर्म निवार त्रियोग तजे, शिव मारग मांहि चलेंचल आणी । १२० ।

से रहित हैं जो मोक्ष के समीप जीवन मुक्त का रंग चढ़ाये हुए हैं, उन अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करता हूं—जिन्हों ने भवसागर में पड़े हुए कितने ही मनुष्यों को उभारा है ॥ ११९ ॥

१२०. तीर्थंकर भगवान् सब कुछ जानने वाले, सब कुछ देखने वाले, सब के शिरोमणि ज्ञान से सर्व व्यापक हैं, जिन की पवित्रात्मा पाप से अलिप्त

सर्व मुक्ताक्षर—घनाक्षरी छन्द ॥

कनक रजत धन रतनजडत गण, सकललषणरजसम भतजनवर।
हय गज रथ भट बलगण सहचर, सकल तजत गढ वरणन मयघर।
वन वन वसन रमण सतगत मग, भवभय हरन चरण अघ-रज हर।
उरग अमर नर करन हरष जस, जयजय भण भवजन वरयश कर।

और सब मे उत्तम है। जो उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र के धारक और महा प्रतापी हैं तथा जिन का चित अडोल, बन्धरहित, कर्म रूप मल से रहित उत्तम है-ऐसे श्री जिनेन्द्र प्रभु को देवपति इन्द्र नमस्कार करता हुआ स्तुति करता है। अन्त मे प्रभु अपने शेष ४ अघातिक

मन हय वशाकर तपन अनलमथ, मद गज दलमल कपट मरपहर।
लव ठग पकरत पटक वत, मरकट चपल करण फण फड़ कर।
रप बल अनल दहन बन मन मथ, पर दल दलनअनघभट हलधर।
मकल करम हर चढन अटलगढ, जयजयभणभवजन वरयशाकर।

---

१२२. मन रूपी घोड़े को वश कर क्रोधाग्नि को ठण्डा कर मद (मान) रूपी मतवाले हाथी को बांध कर कपट रूपी सांप को समीप नहीं आने देते, लोभ रूपी ठग को पकड़ कर इस तरह दूर फैंकते हैं जैसे चंचल भाव से बन्दर सांप की फण को पकड़ कर पटकता है। शत्रु के सदृश काम देव को भस्म करने के लिये अग्नि वत् बन, पाप बली को बल देव की

करम सबल भट अडुन कटन गढ़, लडुन फिडन पर दलचलकृत कर।
मत जन परम धरम दल चल धर, चढ़न चरण तप भट वरबल धर।
लडुन पर अपर करन सबल बल, पर दलदलन दरम लग्ब तपवर।
परहर करम परमपद गढ़ चढ़, जय जय भण भव जन वग्य श कर १२३

भांति छिन्न भिन्न कर देते हैं, सब कर्मों का नाश कर साधु मोक्ष रूपी सुरक्षित अचल किले के ऊपर चढ़ जाते हैं, संसारी मनुष्य उन की अच्छी प्रकार प्रशंसा करते हुए जय २ कार बोलते हैं ॥ १२२ ॥

१२३. बलवान् लड़ाका कर्म अपने कटक सहित दृढ़ किले मे स्थित हो कर अनेक छलों के बल से चैतन्य के साथ लड़ता है, और इधर सज्ञान

सकलजगतपरअचलअमर वर, अगमअलखपदअटलअकथजस
धर जल दहन पवन वनत समय, सकलअटकतजपरम सदन पस।
सरप अमर नर करण हरष जस, वचन परम रस भव जन दस दम।
जग तरवरहरपरमअनघभव, भवजलतरवरयश करहरजस।१२४।

साधु पुरुष परम धर्म रूपी सैना के बल को धारण कर चारित्र व तप स्वरूप शूरवीरों को साथ ले समर (लडाई) में कूद कर चढ़ाई करते हैं। बल के सहित एक दूसरे के साथ युद्ध करते हुए अच्छी प्रकार तत्व दर्शन के ज्ञाता मुनिराज तपोबल से दूसरे पक्ष को हराते हैं, कर्म्म के हारने पर जब वे मोक्ष पद रूप किले पर चढ़ते हैं तब भले (भव्य)

कलश मालिनि छन्द ॥

अठ दश वरषे चौमठे चेत मासे ।
शशि मृग मित पक्षे पंचमी पाप नासे ।
रच मुनि गुण माला मोद पाया कसूरे ।
हर जस गुण गाया नाथ जी आस पूरे ॥ १२५ ॥

---

१२५. विक्रम सम्वत् १८६४ चैत्र महीने में चन्द्रमा के मृग शिरा नक्षत्र में आने पर शुक्लपक्ष की पञ्चमी के दिन पापों को नाश करने वाले श्री साधु गुणमाला नामक ग्रन्थ कसूर शहर में सम्पूर्ण करके कवि हरयश राय श्रावक अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होकर श्री जिनेन्द्र भगवान का